धक्का लग गया कि वह सम्हलने भी नहीं पाया। वह पुण्यात्मा विवेक शक्ति केवल काँप रही थी!

युवकके मनमें एक प्रश्न, विजलीके नृत्यकी भाँति मुड़कर मटक-मटककर, घूमने लगा—क्यों नहीं इतने सब भूखे भिखारी जगकर, जागृत होकर, उसको डण्डे मारकर चूर कर देते हैं—क्यों उसे अब तक जिन्दा रहने दिया गया?

परन्तु इसका जवाब क्या हो सकता है?

वह हारा-सा, सड़कके किनारे-किनारे चलने लगा! मानो उस गहरे अन्धेरेमें भी भूखी आत्माओंकी हज़ार-हज़ार आँखें उसकी बुज़दिली, पाप और कलंकको देख रही हों। स्टेशनकी ओर जानेवाली सीधी सड़क मिलते ही युवकने पटरी बदल ली।

लम्बी सीधी सड़कपर चाँदनी आधी नहीं थी क्योंकि दोनों ओर अट्टालिकाएँ नहीं थीं; केवल किनारेपर कुछ-कुछ दूरियोंसे छोटे-छोटे पेड़ लगे हुए थे। मौन, शीतल चाँदनी सफ़ेद कफ़नकी भाँति रास्तेपर बिछती हुई दो क्षितिजोंको छू रही थी। एक विस्तृत, शान्त खुलापन युवकको ढँक रहा था और उसे सिर्फ़ अपनी आवाज़ सुनाई दे रही थी—पाप, हमारा पाप, हम ढीले-ढाले, सुस्त, मध्यवर्गीय आत्म-सन्तोषियोंका घोर पाप। बंगालकी भूख हमारे चरित्र-विनाशका सबसे बड़ा सबूत। उसकी याद आते ही, जिसको भुलानेकी तीव्र चेष्टा कर रहा था, उसका हृदय काँप जाता था, और विवेक-भावना हाँफने लगती थी।

उस लम्बी सुदीर्घ श्वेत सड़कपर वह युवक एक छोटी-सी नगण्य छाया होकर चला जा रहा था।

०

क्षण भर की दुल्हन

२११
नन्ददाणी

श्री सुबिदो नागरी मन्डार
क्रमांक 60125
दिनांक 18.3.61
(पुस्तकालय) बीकानेर

उनमें घिर जाता है, और निकल नहीं पाता।

परन्तु फिर भी एक उद्धारका रास्ता है, एक स्थान है जहाँ वह निश्चित आश्रय पा सकता है। परन्तु क्या वह मिल सकेगा?

उफ्! कितनी घृणा! कितनी शर्म! इससे तो मर जाना ही अच्छा, जब कि आधारशिला ही डूब रही हो। मूल स्रोत ही सूख रहा हो। वह है, तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं! कुछ भी नहीं!

'हाय, माँ,' वह चिल्ला उठता है। परन्तु वह अपनी माँको नहीं पुकारता; उस विश्वात्मक मातृ शक्तिको पुकारता है कि वह आये और उसको बचाये। वह कर ही क्या सकता है; वह अपने आँचलसे उसे न हटाये।

'हाय! परन्तु क्या मेरा यह भी भाग्य है! तो फिर मुझे माता ही क्यों दी! वह मर....' और वह अपनी ज़बान काट लेता है, सोचता है शायद वह ग़लत हो, जो कुछ सुना है, जो कुछ सुनता आ रहा है वह भी ग़लत है। सब कुछ ग़लत हो सकता है, जैसे सब कुछ सही हो सकता है! भाग्यकी ही परीक्षा है तो फिर यही सही!

और उस लड़केको याद आ गया कि किस तरह स्कूलके लड़के उसे छेड़ते हैं, उसे तंग करते हैं, वह उनसे लड़ता है। मार खा लेता है। उसके मित्र भी उसे बेईमान समझने लगे हैं, क्योंकि वह तो ऐसी माताका सुपुत्र है। वे विषपूर्ण ताने कसते हैं। व्यंग्य-भरी मुसकान मुसकराते हैं। क्या वे जो कुछ कहते हैं, सच है? क्या काकाका और मेरी माँका—छिः छिः, थूः थूः, छिः छिः, थूः थूः!

और वह तेरह बरसका लड़का रास्ते चलते-चलते घृणा और लज्जाकी आगमें जल जाता है। काका (जो उसके काका नहीं हैं) और माँको उसने कई बार पास बैठे हुए देखा है। पर उसे शंका तब नहीं हुई। कैसे होती? पर आज वह उसको उसी तरह घृणा कर रहा

क्षण भर की दुल्हन

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

और वह प्रश्न अधिक कटु होकर, दाहक होकर, दुर्दम होकर उसे बाध्य करने लगा। वह अपनी प्रेममयी मातासे घृणा करे या प्रेम करे! यह प्यारी-प्यारी गोद, यह गरम-गरम स्नेह-भरा पेट जिसमें वह नौ महीने रहा—क्या उससे घृणा करनी ही पड़ेगी? पर उफ्! यदि उसको सन्तोष हो जाय कि उसकी माँ ऐसी नहीं है, कि वह पवित्र है, यदि वह स्वयं इतना कह दे कि कहनेवाले लोग ग़लत कहते हैं – हाँ वे ग़लत कहते हैं – तो उसे सन्तोष हो जायगा! वह जी जायगा! उसकी प्यारी-प्यारी माँ और वह!

एक-दो मिनट वह वैसा ही खड़ा रहा। और फिर वह उसके पास गया और उसके पेटपर सिर रख दिया। न जाने कहाँसे उसकी रुलाई आने लगी और वह रोने लग गया! लोगोंके किये हुए अपमान, व्यंग्य-का दुःख बहने लगा। पर वह तबतक ही था जबतक माँ सो रही थी। वह चाहता था कि वह सोयी ही रहे कि तबतक वह उस गोदको अपनी गोद समझ सके जिस गोदमें उसने आश्रय पाया है।

लड़केके गरम आँसुओंके स्पर्शसे सुशीला जाग उठी। देखा तो नरेन्द्र गोदमें रो रहा है। उसे आश्चर्य हुआ, स्नेह भर आया। उसको पुचकारा और पूछा, 'क्यों? स्कूलसे इतनी जल्दी कैसे आये, अभी तो ढाई भी नहीं बजा है।'

जैसे ही माँ जगी, नरेन्द्रका रोना थम गया। न जाने कहाँसे उसके हृदयमें कठोरता उठ आयी जैसे पानीमें-से शिला ऊपर उठ आयी हो और भयानक दाहक प्रश्नमयी ज्वाला उसके मनको जलाने लगी। सुशीलाने नरेन्द्रके गालोंपर हलकी थप्पड़ जमाते हुए कहा, 'बोलो, न?'

और नरेन्द्र गुम-सुम! उसके गाल न जाने किस शर्मसे लाल हो रहे थे, आँखें जल रही थीं।

नरेन्द्र माँकी गोदमें ही पड़ा था पर उसका उसे अनुभव नहीं हो रहा था।

है, जैसे जलते शरीरके मांसकी दुर्गन्ध !

परन्तु फिर भी उसे विश्वास-सा कुछ है। वह सोच रहा है, शायद ऐसा न हो।

और वह लड़का अति व्याकुल होकर अपने पैर बढ़ा लेता है। अँधेरी गलियोंमे-से होता हुआ अपने भाग्यकी परीक्षा करनेके लिए चल पड़ता है।

जब वह घरकी देहरीपर थमा तो पाया माँ सो रही है।

एक चोरेपर सुशीला सोयी हुई थी। सिरके पास ही लुढ़ककर गिर पड़ी थी, कोई पुस्तक ! शान्त, सुकोमल मुख निद्रा-मग्न था। आँखें मुँदी हुई थी जिनपर कमल वार दिये जा सकते है। चेहरेपर कोमलता-पूर्ण स्निग्ध माधुर्यके शान्त-निर्मल सरोवरके अचचल जलप्रसार-सा पड़ा हुआ झीना नीलम चाँदनीकी प्रसन्नताके समान दिखलाई देता था। अस्तव्यस्तताके कारण गोरा पतला पेट खुला दिखलाई देता था और वह उसी तरह पवित्र सुन्दर मालूम होता था, जैसे दो सघन श्यामल बादलोंके बीचमें प्रकाशमान चन्द्र पैर उघाड़े फैले हुए थे मुक्त, जैसे जगल-में कभी-कभी कदलीके लाल फूल वृक्षकी मर्यादा छोड़कर टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे होते हुए हरी घासके ऊपर अपनेको ऊँचा कर देते हैं, फैला देते हैं। ऐसी यह सुशीला, गरिमा और स्त्रीसुलभ कोमलतामें पूर्ण सोयी हुई थी। उसके भालपर सौभाग्य-कुंकुम नहीं था। उसके स्थानपर गोदा हुआ छोटा नीला-सा दाग़ ज़रूर दिखलाई देता था, और वह अपने कमनीय तारुण्यमें वैधव्य लिये हुए उसी तरह दिखलाई देती थी जैसे विस्तृत रेगिस्तानमें फैली हुई ठिठुरते हुए शीतकालमें पूर्णिमाकी चाँदनी।

लड़केने माँको देखा कि यह वही पेट है, यह वही गोद है। उसके स्नेह-माधुर्यकी उष्णता कितनी स्पृहणीय है !

चाहने लगा खूब ऊँचे स्वरसे कि आसमान भी फट जाय, धरती भी भग्न हो जाय! वह ऊँचे स्वरमें पुकारने लगा, 'माँ' मानो कोई यात्री टूटे हुए जहाज़के एक तख्तेसे लगकर, जो कि उसके हाथसे कभी भी छूट सकता है, घनघोर लहराते हुए समुद्रमें अपनी रक्षाके लिए चिल्ला उठता है! मरणदेशसे वह जीवनके लिए कातर-पुकार!

परन्तु यह सत्यानाश उसके हृदयके अन्दर ही हुआ और उसका निःसहाय रोदन स्वर भी उसके हृदयमें। बाहरसे वह फटी हुई आँखों-से संसारको देख रहा था। क्या यह उसके प्रश्नका जवाब था? वह सिपिट गया, ठिठुर गया जैसे संसारमें उसे स्थान नहीं है। और एक कोनेमें मुँह ढाँपकर वह सिसकने लगा।

सुशीला अन्दर चली गयी जहाँ सामान रखा जाता है। वहाँ बैठ गयी एक डिब्बेपर। कमरेमें सब दूर शान्त अन्धकार था।

अरे, यह लड़का क्या पूछ बैठा। कौन-से पुराने घावकी अधूरी चमड़ी उसने खींच ली? वह क्या जवाब दे जब कि वह स्वयं ही प्रश्न लायी है। यही तो है जिसका जवाब वह चाहती है दुनियासे; सबसे?

और सुशीलाकी आँखोंके सामने एक पुरानी तसवीर खिंच आयी। तब नरेन्द्रका जन्म हुआ था एक गाँवमें। एक अँधेरा कमरा जिसको सावधानीसे बन्द कर दिया गया था चारों ओरसे ताकि हवा न आ सके। सुशीला खाटपर शिथिल पड़ी थी। तब वह सोलह बरसकी थी और पास ही में शिशु नरेन्द्र और 'वे' दरवाज़ेमें सामने खड़े थे। हाँ, 'वे' जिनकी घुँघराली मूँछोंमें मुसकान समा नहीं रही थी। वे प्रसन्न थे। वे चालीस वर्ष पार कर रहे थे, तो क्या हुआ। वे बड़े प्रेमसे सुशीलासे बरतते थे। बहुत हृदयसे उन्होंने सुशीलाके स्त्रीत्वको सम्हाला। उसपर अपना आरोप नहीं होने दिया।

एक समयकी बात है कि वे बहुत खुश थे। न जाने क्यों? वे

'माँ,' उसने कठोर, काँपते-सकुचाते हुए शब्दोंमें पूछा।

सुशीला शंकातुर हो उठी, 'क्या ?'

'सच कहोगी ?' उसने दृढ़ स्वरमें पूछा।

सुशीलाने अधिक उद्विग्न होकर कहा, 'क्या है ? बोल जल्दी।'

नरेन्द्रने धीरे-धीरे गोदमें-से अपना लाल मुँह निकाला और माँकी ओर देखा। उसका वही, कुछ उद्विग्न पर स्मितमय, सुकोमल चेहरा! मानो वह अमृत वर्षा कर रही हो। आशाका ज्वार उमड़ने लगा! तो वह मेरी ही माता रहेगी।

उसने फिर कहा, 'सच कहोगी, सचमुच ?'

'हाँ रे!'

'माँ तुम पवित्र हो ? तुम पवित्र हो, न ?'

सुशीलाको कुछ समझमें नहीं आया, बोली, 'मानी ?'

नरेन्द्रने विचित्र दृष्टिसे देखा। और सुशीलाका आकलनशील मुख स्तब्ध हो गया। निर्विकार हो गया। गट्ठर हो गया। उसकी जाँघ, जिसपर नरेन्द्र पड़ा हुआ था, सुन्न पड़ गयी। उसे मालूम हीं नहीं हुआ कि कोई वजनदार वस्तु नरेन्द्र नामकी उसकी गोदमें पड़ी है।

उसने नरेन्द्रको एक ओर खिसका दिया और चुपचाप आँखोंमें एक हिम्मत लेकर उठी, जैसे दीवारपर छाया उठती हुई दीखती है जिसकी अपनी कोई गति नहीं है। उसके हृदयमें एक तूफान, जीवनका एक आवेग उठ खड़ा हुआ। मानो वह वेगवान ववण्डर जिसमें धूल, कचरा, कागज, पत्ते, कंकर-काँटे सब छूट पड़ते हैं। और वह उसीके प्रवाहमें शासित होकर उठ खड़ी हुई और चली गयी अन्दर, घरके अन्दर मानो खूब धूपमें पानीके ऊपरसे उठता हुआ वाष्प-पुंज लहराकर आसमानमें खो जाता है।

नरेन्द्रकी नैया मानो इस महासागरमें डूब गयी। उसके जहाजके टुकड़े-टुकड़े हो गये उसीके सामने। वह क्रन्दनविह्वल होकर रोना

आया। मरणशय्यापर पड़े हुए पति, अँधेरे कमरेमें उपचार करनेवाली केवल एक सुशीला और नरेन्द्र ! फिर वही दृश्य, पर कितना बदला हुआ ! वही एकान्त पर कितना अलग ! और पति कह रहे हैं, 'मैंने तुम्हारे प्रति अपराध किया है, मैं चला; नरेन्द्रको सम्हालना।' और नरेन्द्रको बुलाते हैं, सुशीला नरेन्द्रको पकड़कर उनके मुँहके सामने रख देती है। वे चूमनेकी कोशिश करते हैं और उनकी आँखोंसे आँसू झर पड़ते हैं और फिर वे सुशीलाको कहते हैं 'मैंने तुम्हारा अपराध किया है।' और सुशीला रोती हुई 'नहीं-नहीं' कहती है, समझानेकी कोशिश करती है और वे कहते हैं 'नरेन्द्रको सम्हालना।' इतनेमें मामा आ जाते हैं। सुशीला हट जाती है।

अन्तिम क्षण ! पतिके अन्तिम श्वासकी घर्राहट ! और सुशीला-का हृदयभग्न, फिर ऊँचा रोदन स्वर ! मानो अब वह आसमानको फाड़ देगा !

वे कितने अच्छे थे ! कितने स्नेहमय ! कितने गम्भीर ! कितने कोमल !

और अपवित्रा सुशीला फिरसे दहाड़ मारकर रो पड़ती है। क्या उनको कभी यह मालूम था कि सुशीलाको आगे कितना कष्ट सहना पड़ेगा।

यदि आज 'वे' होते, चाहे जैसे भी हो, तो क्या इतना दुःख होता। कितनी सुरक्षित होती वह ! मजाल होती किसीकी कोई कुछ कह ले। उन्हीं तीस रुपयोंमें वह अपनी ग़रीबीका सुख भोगती।

परन्तु विधि किसके इच्छानुसार चलता है ? जब सुख बदा नहीं है, तो कहाँसे मिलेगा !

घरके ठीकरे, कुछ सोना-चाँदीकी वस्तुएँ बेंच-बाचकर····और उसके जीवनमें—विधवाके जीवनमें अचानक उसका आना—एकका आना !

और रोती हुई सुशीलाके सामने एक दृश्य आता है ! दुपहर !

बिस्तरपर लेटे हुए थे। नरेन्द्र पास ही खेल रहा था। सुशीला उनके पास बैठी हुई थी। तब एकाएक न जाने किस भावनावश दुखी होते हुए कहा, 'सुशी, मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है।' और वे यथार्थ दुःखसे दुःखी मालूम दिये।

'क्यों, क्या ?'

'मैं तुमको सुख नहीं दे सका ?'

'ऐसा मत कहो।'

'नहीं सुशीले, मैं अपनेको धोखा नहीं दे सकता। मैंने तुम्हारे प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है।'

'हो क्या गया है तुम्हें आज—तुम ऐसा मत कहो, नहीं तो मैं रूठ जाऊँगी।' और सुशीला हँस पड़ी। लेकिन 'वे' नहीं हँसे।

वे कहते चले। मुझे तुमसे विवाह नहीं करना था, तुमको एक सलोना युवक चाहिए था, जिसके साथ तुम खेल सकती, कूद सकती। और वे सुशीलाके पास सरक आये, उसकी मोह-भरी गोदमें ढुलक पड़े। अपना मुँह छिपा लिया उसमें। शायद, वे रो रहे थे, न जाने किस रुदनसे, सुखके या दुःखके। पर सुशीलाका स्नेहमय हाथ उनकी पीठपर फिर रहा था। इतने प्रौढ़, पर इतने बच्चे! इतने गम्भीर पर इतने आकुल! और सुशीलाके हृदयमें वह क्षण एक मधुर सरोवरकी भाँति सुखद लहरा रहा था।

आज अपवित्रा सुशीलाकी आँखोंमें यह चित्र मेघोंकी भाँति घुमड़-कर हृदयमें श्रावण-वर्षा कर रहा है। इतना विश्वस्त सुख उसे फिर कब मिला था? जीवनके कुछ क्षण ऐसे ही होते हैं जो जन्म-भर याद रहते हैं। उनके अपने एक विशेष महत्त्वरूपी प्रकाशसे वे नित्य चमकते रहते हैं।

और न मालूम किस घड़ी 'वे' बीमार पड़ गये। उनकी विशाल शक्तिहीन देह मरणासन्न हो गयी। वह दृश्य सुशीलाकी आँखोंमें तैर

जाकर रहना चाहिए, जिससे कि उन्हें दिलासा हो और उनकी ज़िन्दगी आरामसे कटने लगे।

वह कितनी सुखमय पवित्र भूमि थी जिसपर उन दोनोंका स्नेह आ टिका था। वे दोनों आमने-सामने बैठ जाते—बीचमें चायका ट्रे और दोनों बच्चे !

वे कब एक दूसरेकी बाँहोंमें आ गये इसका उनको स्वयं पता नहीं चला। भले ही वे अलग-अलग रहते हों, पर वे एक दूसरेके सुख-दुःखमें कितने अधिक साथी थे।

और अपवित्रा सुशीला सोच रही है अपने अँधेरे कमरेमें कि उन्होंने मेरे जीवनकी दोपहरमें अपनी सहानुभूतिका गीलापन दिया। फिर प्रेम दिया। मैं भीग उठी, उनसे प्रेम किया और न जाने कब तन भी सौंप दिया ! उन दोनोंका घर एक हो गया।

और एक रात !

दोनों बच्चे सो रहे थे। वह उनके लिए जाग रही थी। उसकी आँखें नहीं लगती थीं। वे आ गये अपने सारे तारुण्यमें मस्त।

और जब वह उनके विह्वल आलिंगनमें बिंध गयी तो अचानक सुशीलाको अपने पतिदेवका खयाल आया। उनका स्नेहाकुल मुख कह रहा है, 'तुमको सलोना युवक चाहिए था !'

उस वक़्त सुशीलाने कहा था, 'नहीं' 'नहीं'।

पर आज वह कह रही थी, 'हाँ', 'हाँ'। और वह अधिक गाढ़ होकर उनपर छा गयी। पतिका खयाल उसे फिर भी था।

आज अपवित्रा सुशीला आँखोंमें आँसू लेकर और हृदयमें ज्वार लेकर सोच रही है कि उसे अपने जीवनमें कहीं भी तो विसंगति मालूम नहीं हो रही है। फिर उसके पतिको भी विसंगति कैसे मालूम होती। एक सिरा 'पति' है, दूसरा सिरा 'काका' ! पर इन दोनों सिरोंमें खोजते हुए भी विरोध नहीं मिल रहा है। वह उस सिरेसे इस सिरे तक दौड़ती

नरेन्द्र सात वर्षका है। वह एकका स्वेटर बुन रही है जिसके चार रुपये मिलेंगे। सारा ध्यान उसकी एक-एक सीवनमें लग रहा है। बाहर दुपहर फैली हुई है, भयानक!

उस समय नरेन्द्र आता है, कहता है 'काका' आये हैं। काका पड़ोसमें रहते है। एक तरुण है, अर्धशिक्षित और वह खेलने चला जाता है।

वे आते है अत्यन्त नम्र, शालीन! क्यों? कुछ मालूम नही है? शायद वे उसके स्वर्गीय पतिके कोई लगते है!

पर जब वे चले जाते हैं तब उसका हृदय उनकी महानुभूतिसे आर्द्र हो जाता है। उनकी मानवतामय उदारता उसके हृदयको छू जाती है। वह उनका आदर करने लगती है। वे उसके पूज्य हो उठते हैं।

उनकी स्त्री होती है। रुग्णा! ईमानदार! और एक बच्चा सुधीर।

अब सुशीला उनके यहाँ आने-जाने लगी है। पतिको इतनी फुर्सत नही होती है कि वह हमेशा बैठा रहे, स्त्रीके पास। सुशीला उनकी सेवा करती है। नरेन्द्र सुधीरके साथ खेलता है।

ऐसे भी दिन थे। बहुत अच्छे दिन थे। निकल गये। निकल जाने-वाले थे! और वह समय आया जहाँ जीवनकी सड़क बल खाकर घूम गयी और वहाँ एक मीलका पत्थर लग गया कि जीवन अब यहाँतक आ गया है।

वह मीलका पत्थर था काकाकी स्त्रीका मरना! कई दिनोंके बाद जब सुशीला नरेन्द्रको लेकर उनके यहाँ गयी तो सुधीर उनके पास खड़ा था।

वे रो पड़े। सुशीला चुपचाप बैठी रही। क्या कहती वह? वे और सुधीर, सुशीला और नरेन्द्र! क्या ही अजब जोड़ा था!

सुशीला जब लौटी तो सोच रही थी कि मुझे उनके पड़ोसमे ही

और सुशीलाके हृदयमें कटुता, चिन्ता, विषाद भर आता है।

हम दोनों साथ-साथ, पास-पास बैठते हैं, पर अबतक तो उसने कभी भी ऐसा नहीं किया। उसने तो उसे स्वाभाविक मान लिया। उसकी सारी सहज पवित्रताकी सरलताको उसने स्वीकार कर लिया।

फिर यह कैसा प्रश्न? कैसी महान् विडम्बना है! और मेरे प्रश्नका उत्तर कौन दे सकता है। है हिम्मत किसीमें....?

इतनेमें नरेन्द्रके साथ बहुत कुछ हो गया। काका चले आये। वे पढ़ते हुए बैठे रहे। नरेन्द्र घृणासे जल रहा था। वे कुछ पूछते तो उन्हें वह काट खाता। यही तो है वह पुरुष जिसने उससे, उसकी माताको छीन लिया।

भाग्य था कि काका वहाँसे चले गये। नरेन्द्र सोच रहा था कि वह उन्हें मार डालेगा। पर वह चले गये तो आत्महत्या करनेकी सोचने लगा। वह फ़ौरन जाकर अपनी जान दे देगा। उफ्, तीन घण्टे कितने घोर हैं।

माँ न जाने किस दुःखसे शिथिल-सी चली आयी। उसका चेहरा तप्त था, हृदय जल रहा था। पर उसमें आँसुओंकी बाढ़ आ रही थी।

नरेन्द्र मुँह ढाँपे बैठा हुआ था।

सुशीला उसके पास चली गयी। एकदम उसको अपनी गोदमें ले लिया। उसकी आँखोंसे जल-धारा बरसने लगी और वह ज़ोर-ज़ोरसे चुम्बन लेने लगी। नरेन्द्रने देखा जैसे उसकी माँ उसे फिर मिल गयी हो; पर वह खोयी ही कहाँ थी? फिर भी वह कुण्ठित था, अकड़ा ही रहा।

सुशीला अतिलीन हो बोली, 'तुम मुझे क्या समझते हो नरेन्द्र?'

नरेन्द्र सोचता रहा। उसकी ज़बानपर आ गया, 'पवित्र; पर

है—इस सिरेसे उस सिरे तक। पर सब दूर एक स्वाभाविक चिकनाहट ! फिर वह किस तरह अपवित्र हुई। यह भी कोई समझाये। उसकी शुद्ध सरल आत्मामें कैसे अपवित्रता आ लगी ?

यह सुशीलाका प्रश्न है ? कोई उत्तर दे सकता है ? कमरेमें वैसे ही अँधेरा है। बाहर नरेन्द्र बैठा होगा। दुपहर ढल रही है।

सुशीला अन्दर उद्विग्न है। सोच रही है कि मान लो किसी स्त्रीका पति इतना उदार न होता, जैसे मेरे थे तो भी क्या 'काका'-सरीखे पुरुषके साथ वह अपवित्र हो जाती ! क्या वह सब हृदयका धागा जिसमें भाग्यके रंग बुने हुए हैं, अपवित्र हो गया ? तो फिर पवित्र कौन है ?

और सुशीलाकी आँखोंके सामने एक चित्र आया ! स्वर्गमें ईश्वर अपने सिंहासनपर बैठा है ! न्याय हो रहा है ! सब लोग चुपचाप खड़े हैं ! सुशीला आती है। उसके हाथ-पैर जकड़ दिये गये हैं, उसीके समान दूसरी हजारों स्त्रियाँ आती हैं ! ईश्वर पूछता है—'ये कौन हैं ?'

हवलदार कहता है, 'अपवित्र स्त्रियाँ।'

सुशीला पूछ बैठती है, 'तो फिर पवित्र कौन हैं ?' ईश्वरके एक ओर पवित्र लोग श्वेत-वस्त्र परिधान किये हुए कुरसियोंकी कतारपर बैठे हैं।

क्रोधपूर्वक ईश्वर उनसे पूछता है, 'क्या तुम सचमुच पवित्र हो ?' सब लोग ईश्वराज्ञानुसार अपने अन्दर देखने लगते हैं, पर वे पवित्र कहाँ थे !

सुशीला चिल्ला उठती है उन्मादपूर्वक, उनको कुरसियोंपर-से हटाया जाये।

चित्र चला जाता है। सुशीलाको नरेन्द्रका खयाल आता है। वह बाहर बैठा होगा ! उसको लड़के छेड़ते होंगे। बात तो कबकी फैल गयी है। उफ्, उसका भविष्य ! नहीं मुझे उसीके भविष्यकी चिन्ता है !

और मैं एक दिन पाता हूँ कि नरेन्द्र कुमार एक कलाकार हो गया है। मैं एक गाँवमें मास्टरी करता हूँ पन्द्रह रुपयेकी, सुशीला मर गयी है। पर मैं यहीं दुनियाके आसमानमें एक कृपाणकी भाँति तेजस्वी उल्का-का प्रकाश छाया हुआ देख रहा हूँ जिसकी पूजा सब लोग कर रहे हैं। मुझे बादमें मालूम हुआ कि यह नरेन्द्र कुमारका प्रकाश है। सुशीलाकी जन्मभूमि, हमारा गाँव, धन्य है!

०

कहा नहीं ; उसकी गोदमें चिपक गया और उसके आँसू सहस्र धारा मे प्रवाहित होने लगे। युग-युगका दुःख बहने लगा। तब वे सच्चे माँ-बेटे थे।

सुशीलाने डरते-डरते पूछा, 'तुम उनको, 'काका'को गैर समझते हो ? साफ कहो !'

नरेन्द्रने सोचा; कहा, 'नहीं'।'

सुशीलाने पूछा, 'नहीं न' ! और उसका मुँह नरेन्द्रके मनमें समाया हुआ था।

सुशीलाने रोते हुए कहा, 'तुम कभी उनको तकलीफ मत देना''' अँ।'

नरेन्द्रने कहा, 'नहीं, माँ।'

सुशीला स्थिर हो गयी। जाने किस हवासे मेघ आकाशमें भाग गये।

वह तीव्र हो बोली, 'तो मैं अपवित्र कैसे हुई ?' नरेन्द्रके सामने वे सब लड़के, दूसरे लोग आने लगे, जो उसे इस तरह छेड़ते हैं। उसने त्रस्त होकर कहा 'लोग कहते हैं।' सुशीला और भी अधिक तीव्र हो गयी। बोली, 'तो तुम उनसे जाकर क्यों नहीं कहते, बुलन्द आवाजमें कि मेरी माँ ऐसी नहीं है।'

नरेन्द्रने कहा, 'वे मुझे छेड़ते हैं, मुझे तंग करते हैं, मैं स्कूल नहीं जाऊँगा।'

'तुम बुजदिल हो।'

और यह शब्द नरेन्द्रके हृदयमें तीक्ष्ण पत्थरके समान जा लगा। वह बच्चा तो था लेकिन तिलमिला उठा। उसे भूला नहीं। अमूल्य निधिकी भाँति उस घावके सत्यको उसने छिपा रखा।

उस आदमीमें मेरी दिलचस्पी बहुत बढ़ गयी। डर भी लगा। घृणा भी हुई। किस आदमीसे पाला पड़ा। फिर भी, उस अहातेपर चढ़कर, मैं झाँक चुका था। इसलिए, एक अनदिखती ज़ंजीरसे बँध तो गया ही था।

उस जनानेने कहना जारी रखा, 'उस पागलख़ानेमें कई ऐसे लोग डाल दिये गये हैं जो सचमुच आजकी निगाहसे बड़े पागल हैं। लेकिन उन्हें पागल कहनेकी इच्छा रखनेके लिए आजकी निगाह होना ज़रूरी है।'

मैंने उकसाते हुए कहा, 'आजकी निगाहसे क्या मतलब ?'

उसने भौंहें समेट लीं। मेरी आँखोंमें आँखें डालकर उसने कहना शुरू किया, 'जो आदमी आत्माकी आवाज़ कभी-कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करके उससे छुट्टी पा लेता है, वह लेखक हो जाता है। आत्माकी आवाज़ जो लगातार सुनता है, और कहता कुछ नहीं, वह भोला-भाला सीधा-सादा बेवक़ूफ़ है। जो उसकी आवाज़ बहुत ज़्यादा सुना करता है और वैसा करने लगता है, वह समाज-विरोधी तत्त्वोंमें यों ही शामिल हो जाया करता है। लेकिन जो आदमी आत्माकी आवाज़ ज़रूरतसे ज़्यादा सुन करके हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनीमें भीतरके हुक्मका पालन करता है, वह निहायत पागल है। पुराने ज़मानेमें सन्त हो सकता था। आजकल उसे पागलख़ानेमें डाल दिया जाता है।'

मुझे शक़ हुआ कि मैं किसी फ़ैण्टेसीमें रह रहा हूँ। यह कोई ऐसा-वैसा कोई गुप्तचर नहीं है। या तो यह ख़ुद पागल है या कोई पहुँचा हुआ आदमी है! लेकिन, वह पागल भी नहीं है न वह पहुँचा हुआ है। वह तो सिर्फ़ जनाना आदमी है या वैज्ञानिक शब्दावली प्रयोग करूँ तो यह कहना होगा कि वह है तो जवान-पट्ठा लेकिन उसमें जो लचक है वह औरतके चलनेकी याद दिलाती है!

मैंने उससे पूछा, 'तुमने कहीं ट्रेनिंग पायी है ?'

लेकिन, प्रश्न यह है कि वे वैसा क्यों करते हैं! किसी भीतरी न्यूनताके भावपर विजय प्राप्त करनेका यह एक तरीका भी हो सकता है। फिर भी, उसके दूसरे रास्ते भी हो सकते हैं। यही पेशा क्यों? इसलिए, उसमें पेट और प्रवृत्तिका समन्वय है। जो हो, इस शख्सका जनानापन ग़ास मानी रखता है!

हमने वह रास्ता पार कर लिया और अब हम फिरसे फ़ैशनेबल रास्तेपर आ गये, जिसके दोनों ओर युकलिप्टसके पेड़ कतार बाँधे खड़े थे। मैंने पूछा—'यह रास्ता कहाँ जाता है?' उसने कहा,—'पागलखाने-की ओर।' मैं जाने क्यों सन्नाटेमें आ गया।

विषय बदलनेके लिए मैंने कहा, 'तुम यह धन्धा कबसे कर रहे हो?'

उसने मेरी तरफ़ इस तरह देखा मानो यह सवाल उसे नागवार गुज़रा हो। मैं कुछ नहीं बोला। चुपचाप चला, चलता रहा। लगभग पाँच मिनट बाद जब हम उस भैरोंके गेरुए, सुनहली, पन्नी जड़े पत्थर *तक पहुँच गये, जो इस अत्याधुनिक युगमें एक तारके खम्भेके पास श्रद्धापूर्वक स्थापित किया गया था, उसने कहा, मेरा किस्सा मुख्तसर* है। लाज-शरम दिखावेकी चीजें हैं। तुम मेरे दोस्त हो, इसलिए कह रहा हूँ। मैं एक बहुत बड़े करोड़पति सेठका लड़का हूँ। उनके घरमें जो काम करनेवालियाँ हुआ करती थीं, उनमें-से एक मेरी माँ है, जो अभी भी वहीं है। मैं, घरसे दूर, पाला-पोसा गया, मेरे पिताके खर्चेसे। माँ मिलाने आती। उसीके कहनेसे मैंने बमुश्किल तमाम मैट्रिक किया। फिर, किसी सिफ़ारिशसे सी० आई० डी० की ट्रेनिंगमें चला गया। तबसे यही काम कर रहा हूँ। बादमें पता चला कि वहाँका खर्च भी वही सेठ देता है। उसका हाथ मुझपर अभीतक है। तुम उठाईगिरे हो, इसलिए कहा। अरे! वैसे तो तुम लेखक-वेखक भी हो। बहुत-से लेखक और पत्रकार इनफ़ॉर्मर हैं! तो, इसलिए, मैंने सोचा, चलो अच्छा हुआ। एक साथी मिल गया।'

शिक्षित हूँ, अति-संस्कृत हूँ। लेकिन चूँकि अपनी इस अतिशिक्षा और अतिसंस्कृतिके सौष्ठवको उद्‌घाटित करते रहनेके लिए, जो स्निग्ध प्रसन्नमुख चाहिए, वह न होनेसे मैं उठाईगिरा भी लगता हूँ—अपने-आपको!

तो मेरी इस महकको पहचान उस अद्भुत व्यक्तिने मेरे सामने जो प्रस्ताव रखा उससे मैं अपने-आपसे एकदम सचेत हो उठा! क्या हर्ज़ है? इनकमका एक खासा जरिया यह भी तो हो सकता है।

मैंने बात पलटकर उससे पूछा, 'तो हाँ, तुम उस पागलखानेकी बात कह रहे थे। उसका क्या।'

मैंने गरदन नीचे डाल ली। कानोंमें अविराम शब्द-प्रवाह गतिमान हुआ। मैं सुनता गया। शायद, वह उसके वक्तव्यकी भूमिका रही होगी। इस बीच मैंने उससे टोककर पूछा, 'तो उसका नाम क्या है?'

'क्लॉड ईथरली!'

'क्या वह रोमन कैथलिक है—आदिवासी ईसाई है?'

उसने नाराज़ होकर कहा, 'तो अबतक तुम मेरी बात ही नहीं सुन रहे थे?'

मैंने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी एक-एक बात दिलमें उतर रही थी। फिर भी उसके चेहरेके भावसे पता चला कि उसे मेरी बात-पर यकीन नहीं हुआ। उसने कहा, 'क्लॉड ईथरली वह अमरीकी विमान चालक है, जिसने हिरोशिमापर बम गिराया था।'

मुझे आश्चर्यका एक धक्का लगा। या तो वह पागल है, या मैं! मैंने उससे पूछा 'तो उससे क्या होता है?'

अब उसने बहुत ही नाराज होकर कहा, 'अबे बेवकूफ़! नेस्तनाबूद हुए हिरोशिमाकी बदरंग और बदसूरत, उदास और ग़मगीन ज़िन्दगीकी सरदारत करनेवाले मेयरको वह हर माह चेक भेजता रहा जिससे कि उन पैसोंसे दीन-हीनोंको सहायता तो पहुँचे ही; उसने जो

काठका

'सिर्फ तजुर्बेसे सीखा है ! मुझे इनाम भी मिला है।'

मैंने कहा, 'अच्छा !'

और मैं जिज्ञासा और कुतूहलसे प्रेरित होकर उसकी अन्धकारपूर्ण थाहोंमें डूबनेका प्रयत्न करने लगा।

किन्तु, उसने सिर्फ मुसकरा दिया ! तब मुझे वह ऐसा लगा मानो वह अज्ञात साइमके गणितिक सूत्रकी अंक-राशि हो जिसका मतलब तो कुछ जरूर होता है लेकिन समझमें नहीं आता।

मनमें विचारोंकी पंक्तियोंकी पंक्तियाँ बनती गयीं। पंक्तियोंपर पंक्तियाँ। शायद, उसे भी महसूस हुआ होगा ! और जब दोनोंके मनमें चार-चार पंक्तियाँ बन गयीं कि इस बीच उसने कहा, 'तुम क्यों नहीं यह धन्धा करते ?'

मैं हतप्रभ हो गया। यह एक विलक्षण विचार था ! मुझे मालूम था कि धन्धा पैसोंके लिए किया जाता है। आजकल बड़े-बड़े शहरोंके मामूली होटलोंमें जहाँ दस-पाँच आदमी तरह-तरहकी गप लड़ाते हुए बैठते हैं, उनकी बातें सुनकर, अपना अन्दाजा जमानेके लिए, कई भीतरी सूची-भेदक-प्रवेशक आँखें भी सुनती बैठती रहती हैं। यह मैं सब जानता हूँ। खुदके तजुर्बेसे बता सकता हूँ। लेकिन, फिर भी, उस आदमीकी हिम्मत तो देखिए कि उसने कैसा पेचीदा सवाल किया !

आज तक किसी आदमीने मुझसे इस तरहका सवाल न किया था। जरूर मुझमें ऐसा कुछ है कि जिसे मैं विशेष योग्यता कह सकता हूँ। मैंने अपने जीवनमें जो शिक्षा और अदीक्षा प्राप्त की, स्कूलों-कॉलिजोंमें जो विद्या और अविद्या उपलब्ध की, जो कौशल्य और अकौशल प्राप्त किया उसने—मैं मानूँ या न मानूँ—भद्रवर्गका ही अंग बना दिया है। हाँ, मैं उस भद्रवर्गका अंग हूँ कि जिसे अपनी भद्रताके निर्वाहके लिए अब आर्थिक कष्टका सामना करना पड़ता है, और यह भाव मनमें जमा रहता है कि नाश सन्निकट है। संक्षेपमें, मैं सचेत व्यक्ति हूँ, अति-

उसने मानो मेरी बेवक़ूफ़ीपर हँसीका ठहाका मारा, कहा, 'भारतके हर बड़े नगरमें एक-एक अमरीका है ! तुमने लाल ओठवाली चमकदार, गोरी-सुनहली औरतें नहीं देखीं, उनके कीमती कपड़े नहीं देखे। शानदार मोटरोंमें घूमनेवाले अतिशिक्षित लोग नहीं देखे ! नफ़ीस क़िस्मकी वेश्यावृत्ति नहीं देखी ! सेमिनार नहीं देखे। एक ज़मानेमें हम लन्दन जाते थे और इंग्लैण्ड रिटर्ण्ड कहलाते थे और आज वाशिंगटन जाते हैं। अगर हमारा वस चले और आज हम सचमुच उतने ही धनी हों और हमारे पास उतने ही एटमबम और हायड्रोजन बम हों और रॉकेट हों तो फिर क्या पूछना ! अखबार पढ़ते हो कि नहीं ?'

मैंने कहा, 'हाँ।'

तो तुमने मैकमिलनकी वह तक़रीर भी पढ़ी होगी जो उसने''''को दी थी। उसने क्या कहा था ? ये देश, हमारे सैनिक गुटमें तो नहीं है, किन्तु संस्कृति और आत्मासे हमारे साथ है। क्या मैकमिलन सफ़ेद झूठ कह रहा था ? क़तई नहीं। वह एक महत्त्वपूर्ण तथ्यपर प्रकाश डाल रहा था।

और अगर यह सच है तो यह भी सही है कि उनकी संस्कृति और आत्माका संकट हमारी संस्कृति और आत्माका संकट है ! यही कारण है कि आजकलके लेखक और कवि अमरीकी, ब्रिटिश तथा पश्चिम युरॅपीय साहित्य तथा विचारधाराओंमें गोते लगाते हैं और वहाँसे अपनी आत्माको शिक्षा और संस्कृति प्रदान करते हैं ! क्या यह झूठ है। और हमारे तथाकथित राष्ट्रीय अखबार और प्रकाशन-केन्द्र ! वे अपनी विचारधारा और दृष्टिकोण कहाँसे लेते हैं ?'

यह कहकर वह ज़ोरसे हँस पड़ा और हँसीकी लहरोंमें उसकी जिस्म लचकने लगी।

उसने कहना जारी रखा, 'क्या हमने इण्डोनेशियाई या चीनी या अफ़्रीकी साहित्यसे प्रेरणा ली है या लुमुम्बाके काव्यसे ? छिः छिः !

भयानक पाप किया है वह भी कुछ कम हो !'

मैंने उसके चेहरेका अध्ययन करना शुरू किया। उसकी वे खुरदुरी घनी मोटी भौहें नाकके पास आ मिलती थी। कड़े वालोंकी तेज रेजरसे हजामत किया हुआ उसका वह हरा-गोरा चेहरा, सीदी-मोटी नाक और मझोलिया होठ और गमगीन आँखें, जिसकी जनाना लचक, डबल ठुड्डी, जिसके बीचमें हलका-सा गड्ढा !

यह कौन शख्स है, जो मुझसे इस तरह बात कर रहा है। लगा कि मैं सचमुच इस दुनियामें नहीं रह रहा हूँ, उससे कोई दो सौ मील ऊपर आ गया हूँ जहाँ आकाश, चाँद-तारे, सूरज सभी दिखाई देते हैं। रॉकेट उड़ रहे हैं। आते हैं, जाते हैं और पृथ्वी एक चौड़े नीले गोल जगत्-सी दिखाई दे रही है, जहाँ हम किसी एक देशके नहीं हैं, सभी देशोंके हैं। मनमें एक भयानक उद्वेगपूर्ण भावहीन चंचलता है ! कुल मिलाकर, पल-भर यही हालत रही। लेकिन वह पल बहुत ही घन-घोर था। भयावह और सन्दिग्ध ! और उसी पलसे अभिभूत होकर मैंने उससे पूछा, 'तो क्या हिरोशिमावाला क्लॉड ईथरली इस पागल-खानेमें है।'

वह हाथ फैलाकर उँगलियोंसे उस पीली बिल्डिंगकी तरफ इशारा कर रहा था जिसके अहातेकी दीवारपर चढ़कर मेरी आँखोंने रोशन-दान पार करके उन तेज आँखोंको देखा था जो उसी रोशनदानमें-से गुजरकर बाहर जाना चाहती हैं। तो, अगर मैं इस जनाने लचकदार शख्सपर यकीन करूँ तो इसका मतलब यह हुआ कि मेरी देखी वे आँखें और किसीकी नहीं, खास क्लॉड ईथरलीकी ही थी। लेकिन यह कैसे हो सकता है !

उसने मेरी बात ताड़कर कहा; 'हाँ, वह क्लॉड ईथरली ही था।'

मैंने चिढ़कर कहा, 'तो क्या यह हिन्दुस्तान नहीं है। हम अम-रीकामें ही रह रहे हैं ?'

ग़मग़ीन हो गयीं।

उसने कहा, 'क्लॉड ईथरली एक विमान चालक था ! उसके एटम-बमसे हिरोशिमा नष्ट हुआ। वह अपनी कारगुज़ारी देखने उस शहर गया। उस भयानक, बदरंग, बदसूरत कटी लोथोंके शहरको देखकर उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसको पता नहीं था कि उसके पास ऐसा हथियार है और उस हथियारका यह अंजाम होगा। उसके दिलमें निरपराध जनोंके प्रेतों, शवों, लोथों, लाशोंके कटे-पिटे चेहरे तैरने लगे। उसके हृदयमें करुणा उमड़ आयी। उधर, अमरीकी सरकारने उसे इनाम दिया। वह 'वॉर हीरो' हो गया। लेकिन उसकी आत्मा कहती थी कि उसने पाप किया, जघन्य पाप किया है। उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। नहीं। लेकिन, उसका देश तो उसे हीरो मानता था। अब क्या किया जाय। उसने सरकारी नौकरी छोड़ दी। मामूलीसे मामूली काम किया। लेकिन, फिर भी वह 'वॉर हीरो' था, महान् था। क्लॉड ईथरली महानता नहीं, दण्ड चाहता था, दण्ड !'

'उसने वारदातें शुरू कीं जिससे कि वह गिरफ़्तार हो सके और जेलमें डाला जा सके। किन्तु प्रमाणके अभावमें वह हर बार छोड़ दिया गया। उसने घोषित किया कि वह पापी है, पापी है, उसे दण्ड मिलना चाहिए, उसने निरपराध जनोंकी हत्या की है, उसे दण्ड दो। हे ईश्वर ! लेकिन, अमरीकी व्यवस्था उसे पाप नहीं, महान् कार्य मानती थी। देश-भक्ति मानती थी। जब उसने ईथरलीकी ये हरकतें देखीं तो उसे पागलख़ानेमें डाल दिया। टेक्सॉस प्रान्तमें वायो नामकी एक जगह है—वहाँ उसका दिमाग़ दुरुस्त करनेके लिए उसे डाल दिया गया। वहाँ वह चार साल तक रहा, लेकिन उसका पागलपन दुरुस्त नहीं हो सका।'

'चार साल बाद वह वहाँसे छूटा तो उसे राय० एल० मैनट्रथ नाम-का एक गुण्डा मिला। उसकी मददसे उसने डाकघरोंपर धावा मारा। आख़िर मय साथीके वह पकड़ लिया गया। मुक़दमा चला। कोई फ़ायदा

वह जानवरोंका, चौपायोंका, साहित्य है ! और, इसका ? अरे ! यह तो स्वार्थकी बात है ! इसका राज और ही है। इससे हम मदद चाहते हैं, लेकिन डरते भी हैं।'

'छोड़ो ! तो मतलब यह है कि अगर उनकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, उनकी आत्मा हमारी आत्मा और उनका संकट हमारा संकट है—जैसा कि सिद्ध है–जरा पढ़ो अखबार, करो बातचीत अँगरेजीदाँ फरटिबाज लोगोंसे—तो हमारे यहाँ भी हिरोशिमापर बम गिरानेवाला विमान चालक क्यों नहीं हो सकता और हमारे यहाँ भी सम्प्रदायवादी, युद्धवादी लोग क्यों नहीं हो सकते ! मुख्तसर किस्सा यह है कि हिन्दुस्तान भी अमरीका ही है।'

मुझे पसीना छूटने लगा। फिर भी मन यह स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं था कि भारत अमरीका ही है और यह कि क्लॉड ईथरली उसी पागलखानेमें रहते हैं—उसी पागलखानेमें रहना है ! मेरी आँखोंमें सन्देह, अविश्वास, भय और आशंकाकी मिली-जुली चमक जरूर रही होगी, जिसको देखकर वह बुरी तरह हँस पड़ा। और उसने मुझे एक सिगरेट दी।

एक पेड़के नीचे खड़े होकर हम दोनों बात करते हुए नीचे एक पत्थरपर बैठ गये। उसने कहा, 'देखा नहीं ! ब्रिटिश-अमरीकी या फ्रांसीसी कवितामें जो मूड्स, जो मन स्थितियाँ रहती हैं—बस वे ही हमारे यहाँ भी हैं, लायी जाती हैं। सुरुचि और आधुनिक भावबोधका तकाजा है कि उन्हें लाया जाय। क्यों ? इसलिए कि वहाँ औद्योगिक सभ्यता है, हमारे यहाँ भी। मानो कि कल-कारखाने खोले जानेसे आदर्श और कर्त्तव्य बदल जाते हों।'

मैंने नाराज होकर सिगरेट फेंक दी। उसके सामने हो लिया। शायद, उस समय मैं उसे मारना चाहता था। हाथापाई करना चाहता था। लेकिन, वह व्यंग्य-भरे चेहरेसे हँस पड़ा और उसकी आँखें ज्यादा

'हमारे अपने-अपने मन-हृदय-मस्तिष्कमें ऐसा ही एक पागलख़ाना है, जहाँ हम उन उच्च पवित्र और विद्रोही विचारों और भावोंको फेंक देते हैं जिससे कि धीरे-धीरे या तो वह ख़ुद बदलकर समझौतावादी पोशाक पहन सभ्य, भद्र, हो जाय यानी दुरुस्त हो जाय या उसी पागल-ख़ानेमें पड़ा रहे !'

मैं हतप्रभ तो हो ही गया ! साथ-ही-साथ, उसकी इस कहानी-पर मुग्ध भी। उस जीवन-कथासे अत्यधिक प्रभावित होकर मैंने पूछा, 'तो क्या यह कहानी सच्ची है ?'

उसने जवाब दिया, 'भई वाह ! अमरीकी साहित्य पढ़ते हो कि नहीं ? ब्रिटिश भी नहीं ! तो क्या पढ़ते हो ख़ाक़ !....अरे भाई रूसपर तो अनेक भाषाओंमें कई पुस्तकें निकल गयी हैं। तो क्या पत्थर जानकारी रखते हो। विश्वास न हो, तो खण्डन करो, जाओ टटोलो। और, इस बीच मैं इसी पागलख़ानेकी सैर करवा लाता हूँ।'

मैंने हाथ हिलाकर इनकार करते हुए कहा, 'नहीं, मुझे नहीं जाना।'

'क्यों नहीं ?' उसने झिड़ककर कहा, 'आजकल हमारे अवचेतनमें हमारी आत्मा आ गयी है, चेतनमें स्व-हित और अधिचेतनमें समाजसे सामंजस्यका आदर्श—भले ही वह बुरा समाज क्यों न हो ? यही आज-के जीवन-विवेकका रहस्य है।....'

'तुमको वहाँकी सैर करनी होगी। मैं तुम्हें पागलख़ाने ले चल रहा हूँ, लेकिन पिछले दरवाज़ेसे नहीं, खुले अगलेसे।'

रास्तेमें मैंने उससे कहा, 'मैं यह माननेके लिए तैयार नहीं हूँ कि भारत अमरीका है ! तुम कुछ भी कहो ! न वह कभी हो ही सकता है, न वह कभी होगा ही।'

नहीं। जब यह मालूम हुआ कि वह कौन है और क्या चाहता है तो उसे तुरन्त छोड़ दिया गया। उसके बाद, उसने डल्लॉस नामकी एक जगहके कैशियरपर सशस्त्र आक्रमण किया। परिणाम कुछ नहीं निकला, क्योंकि बड़े सैनिक अधिकारियोंको यह महसूस हुआ कि ऐसे 'प्रख्यात युद्ध वीर' को मामूली उचक्का और चोर कहकर उसकी बदनामी न हो। इसलिए, उसके उस प्राप्त पदकी रक्षा करनेके लिए, उसे फिरसे पागलखानेमें डाल दिया गया।'

'यह है क्लॉड ईथरली! ईथरलीकी ईमानदारीपर अविश्वास करनेकी किसीको शंका ही नहीं रही। उसकी जीवन-कथाकी फिल्म बनानेका अधिकार खरीदनेके लिए एक कम्पनीने उसे एक लाख रुपये देनेका प्रस्ताव रखा। उसने क़तई इनकार कर दिया। उसके इस अस्वीकारसे सबके सामने यह ज़ाहिर हो गया कि वह झूठा और फरेबी नहीं है। वह बन नहीं रहा है।'

'कौन नहीं जानता कि क्लॉड ईथरली अणुयुद्धका विरोध करनेवाली आत्माकी आवाज़का दूसरा नाम है। हाँ! ईथरली मानसिक रोगी नहीं है। आध्यात्मिक अशान्तिका, आध्यात्मिक उद्विग्नताका ज्वलन्त प्रतीक है। क्या इससे तुम इनकार करते हो?'

उसके हाथकी सिगरेट कभीकी नीचे गिर चुकी थी। वह जनाना आदमी तमतमा उठा था। चेहरेपर बेचैनीकी मलिनता छायी थी।

वह कहता गया, 'इस आध्यात्मिक अशान्ति, इस आध्यात्मिक उद्विग्नताको समझनेवाले लोग कितने हैं! उन्हें विचित्र, विलक्षण, विक्षिप्त कहकर पागलखानेमें डालनेकी इच्छा रखनेवाले लोग न जाने कितने हैं! इसीलिए पुराने ज़मानेमें हमारे बहुतेरे विद्रोही सन्तोंको भी पागल कहा गया। आज भी बहुतोंको पागल कहा जाता था। अगर वह बहुत तुच्छ हुए तो सिर्फ़ उनकी उपेक्षा की जाती है, जिससे कि उनकी बात प्रकट न हो और फैल न जाये।'

आत्मा पापाचारोंके लिए, अपने-आपको जिम्मेदार समझती है। हाय रे! यह मेरा भी तो रोग रहा है।

मैंने अपने चेहरेको सख्त बना लिया। गम्भीर होकर कहा, 'लेकिन, ये सब बातें तुम मुझसे क्यों कह रहे हो?'

'इसलिए कि मैं सी० आई० डी० हूँ और मैं तुम्हारी स्क्रीनिंग कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे विभागसे सम्बद्ध रहो। तुम इनकार क्यों करते हो। कहो कि यह तुम्हारी अन्तरात्माके अनुकूल है।'

'तो क्या तुम मुझे टटोलनेके लिए ये बातें कर रहे थे। और, तुम्हारी ये सब बातें बनावटी थीं! मेरे दिलका भेद लेनेके लिए थीं? बदमाश!'

'मैं तो सिर्फ़ तुम्हारे अनुकूल प्रसंगोंको जो हो सकती थी वही कर रहा था।'

•

इस बातको उसने उड़ा दिया। उसे चाहिए था कि वह उस बातका जवाब देता। उसने सिर्फ़ इतना कहा, 'मुश्किल यह है कि तुम मेरी बात नहीं समझते।' मैंने कहा, 'कैसे ?'

'क्लॉड ईथरली हमारे यहाँ भले ही देह-रूपमें न रहे, लेकिन आत्माकी वैसी बेचैनी रखनेवाले लोग तो यहाँ रह ही सकते हैं।'

मैंने अविश्वास प्रकट करके उसके प्रति घृणाभाव व्यक्त करते हुए कहा, 'यह भी ठीक नहीं मालूम होता।'

उसने कहा, 'क्यों नहीं! देशके प्रति ईमानदारी रखनेवाले लोगोंके मनमें,व्यापक पापाचारोंके प्रति कोई व्यक्तिगत भावना नहीं रहती क्या ?'

'समझा नहीं।'

'मतलब यह कि ऐसे बहुतेरे लोग हैं जो पापाचार रूपी, शोषण रूपी डाकुओंको अपनी छातीपर बैठा समझते हैं। वह डाकू न केवल बाहरका व्यक्ति है, वह उनके घरका आदमी भी है। समझनेकी *कोशिश करो!*'

मैंने भौंहें उठाकर कहा, 'तो क्या हुआ ?'

'यह कि उस व्यापक अन्यायका अनुभव करनेवाले किन्तु उसका विरोध करनेवाले लोगोंके अन्त:करणमें व्यक्तिगत पाप-भावना रहती ही है, रहनी चाहिए। ईथरलीमें और उनमें यह बुनियादी एकता और अभेद है।'

'इससे सिद्ध क्या हुआ ?'

'इससे यह सिद्ध हुआ कि तुम-सरीखे सचेत जागरूक संवेदनशील जन क्लॉड ईथरली हैं।'

उसने मेरे दिलमें खंजर मार दिया। हाँ, यह सच था! बिलकुल सच! अवचेतनके अँधेरे तहख़ानेमें पड़ी हुई आत्मा विद्रोह करती है।

रात-बिरात, एकाएक सुनाई देती हैं। वे तीव्र भयकी रोमांचक चीत्कारें हैं क्योंकि वहाँ अपने शिकारकी खोजमें एक भुजंग आता रहता है। वह, शायद, उस तरफ़की तमाम झाड़ियोंके भीतर रेंगता फिरता है।

एक रात, इसी खिड़कीमें-से एक भुजंग मेरे कमरेमें भी आया। वह लगभग तीन फ़ीट लम्बा अजगर था। खूब खा-पीकरके, सुस्त होकर, वह खिड़कीके पास, मेरी साइकिलपर लेटा हुआ था। उसका मुँह 'कैरियर' पर, जिस्मकी लपेटमें, छिपा हुआ था और पूँछ चमकदार 'हैण्डिल'से लिपटी हुई थी। 'कैरियर' से लेकर 'हैण्डिल' तककी सारी लम्बाईको उसने अपने देह-वलयोंसे कस लिया था। उसकी वह काली-लम्बी-चिकनी देह आतंक उत्पन्न करती थी।

हमने बड़ी मुश्किलसे उसके मुँहको शनाख़्त किया। और फिर एकाएक 'फ़िनाइल'से उसपर हमला करके उसे बेहोश कर डाला। रोमांचपूर्ण थे हमारे वे व्याकुल आक्रमण! गहरे भयकी सनसनीमें अपनी कायरताका बोध करते हुए, हम लोग, निर्दयतापूर्वक, उसकी छटपटाती देहको लाठियोंसे मारे जा रहे थे।

उसे मरा हुआ जान, हम उसका अग्नि-संस्कार करने गये। मिट्टीके तेलकी पीली-गेरुई ऊँची लपक उठाते हुए कण्डोंकी आगमें पड़ा हुआ वह ढीला नाग-शरीर, अपनी बची-खुची चेतना समेटकर, इतनी ज़ोरसे ऊपर उछला कि घेरा डालकर खड़े हुए हम लोग हैरतमें आकर, एक क़दम पीछे हट गये। उसके बाद रात-भर, साँपकी ही चर्चा होती रही।

इसी खिड़कीसे लगभग छह गज़ दूर, बेंतकी झाड़ियोंके उस पार, एक तालाब है····बड़ा भारी तालाब, आसमानका लम्बा चौड़ा आईना, जो थरथराते हुए मुसकराता है। और उसकी थरथराहटपर किरनें नाचती रहती हैं।

पक्षी और दीमक

बाहर चिलचिलाती हुई दोपहर है; लेकिन इस कमरेमें ठण्डा मद्धिम उजाला है। यह उजाला इस बन्द खिड़कीकी दरारोंसे आता है। यह एक चौड़ी मुँडेरवाली बड़ी खिड़की है, जिसके बाहरकी तरफ, दीवार-से लगकर, काँटेदार बेंतकी हरी-घनी झाड़ियाँ हैं। इनके ऊपर एक जंगली बेल चढ़कर फैल गयी है; और उसने आसमानी रंगके गिलास-जैसे अपने फूल प्रदर्शित कर रखे हैं। दूरसे देखनेवालोंको लगेगा कि वे उस बेलके फूल नहीं, बरन् बेंतकी झाड़ियोंके अपने फूल हैं!

किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि उस लताने अपनी घुमावदार चालसे न केवल बेंतकी डालोंको, उनके काँटोंसे बचते हुए, जकड़ रखा है, बरन् उनके कंटक-रोमोंवाले पत्तोंके एक-एक हरे फीते-को समेटकर, कसकर, उनकी एक रस्सी-सी बना डाली है; और उस पूरी झाड़ीपर अपने फूल बिखराते-छिटकाते हुए, उन सौन्दर्य-प्रतीकों-को सूरज और चाँदके सामने कर दिया है।

लेकिन, इस खिड़कीको मुझे अकसर बन्द रखना पड़ता है। छत्तीस-गढ़के इस इलाकेमें, मौसम-बेमौसम आँधीनुमा हवाएँ चलती हैं। उन्होंने मेरी खिड़कीके बन्द पल्लोंको ढीला कर डाला है। खिड़की बन्द रखनेका एक कारण यह भी है कि बाहर दीवारसे लगकर खड़ी हुई हरी-घनी झाड़ियोंके भीतर जो छिपे हुए, गहरे, हरे-साँवले अन्तराल हैं, उनमें पक्षी रहते हैं और अण्डे देते हैं। वहाँसे कभी-कभी उनकी आवाजें,

आत्मविश्वास अब मुझमें नहीं हो सकता। एक वयस्क पुरुषका अविवाहिता वयस्का स्त्रीसे प्रेम भी अजीब होता है। उसमें उद्बुद्ध इच्छाके आग्रहके साथ-साथ जो अनुभवपूर्ण ज्ञानका प्रकाश होता है, वह पल-पलपर शंका और सन्देहको उत्पन्न करता है।

श्यामलाके बारेमें मुझे शंका रहती है। वह ठोस बातोंकी बारीकियोंका बड़ा आदर करती है। वह व्यवहारकी कसौटीपर मनुष्यको परखती है। वह मुझे अखरता है। उसमें मुझे एक ठण्डा पथरीलापन मालूम होता है। गीले-सपनीले रंगोंका श्यामलामें सचमुच अभाव है।

ठण्डा पथरीलापन उचित है, या अनुचित, यह मैं नहीं जानता। किन्तु, जब औचित्यके सारे प्रमाण, उनका सारा वस्तु-सत्य, पॉलिशदार टीन-सा चमचमा उठता है तो, मुझे लगता है—बुरे फँसे, इन फालतूकी अच्छाइयोंमें दूसरी तरफ़ मुझे अपने भीतर ही कोई गहरी कमी महसूस होती है, और खटकने लगती है।

ऐसी स्थितिमें, मैं 'हाँ' और 'ना'के बीचमें रहकर, ख़ामोश, 'जी हाँ' की सूरत पैदा कर देता हूँ। डरता सिर्फ़ इस बातसे हूँ कि कहीं यह 'जी हाँ', 'जी हुजूर' न बन जाये। मैं अतिशय शान्ति-प्रिय व्यक्ति हूँ। अपनी शान्ति भंग न हो, इसका बहुत खयाल रखता हूँ। न झगड़ा करना चाहता हूँ, न मैं किसी झगड़ेमें फँसना चाहता····

उपन्यास फेंककर श्यामलाने दोनों हाथ ऊँचे करके ज़रा-सी अँगड़ाई ली। मैं उसकी रूप-मुद्रापर फिरसे मुग्ध होना ही चाहता था कि उसने एक बेतुका प्रस्ताव सामने रख दिया। कहने लगी, 'चलो, बाहर घूमने चलें।'

मेरी आँखोंके सामने बाहरकी चिलचिलाती सफ़ेदी और भयानक गरमी चमक उठी। खसके परदोंके पीछे, छतके पंखोंके नीचे, अलसाते

मेरे कमरेमें जो प्रकाश आता है, वह इन लहरोंपर नाचती हुई किरनोंका उछलकर आया हुआ प्रकाश है। खिड़कीकी लम्बी दरारोंमें-से गुजरकर, वह प्रकाश, सामनेकी दीवारपर चौड़ी मुँडेरके नीचे सुन्दर झलमलाती हुई आकृतियाँ बनाता है।

मेरी दृष्टि उस प्रकाश-कम्पकी ओर लगी हुई है। एक क्षणमें उसकी अनगिनत लहरें नाचे जा रही है, नाचे जा रही हैं। कितना उद्दाम, कितना तीव्र वेग है उन झिलमिलाती लहरोंमें। मैं मुग्ध हूँ कि बाहरके लहराते तालाबने किरनोंकी सहायतासे अपने कम्पोंकी प्रतिच्छवि मेरी दीवालपर आँक दी है।

काश, ऐसी भी कोई मशीन होती जो दूसरोंके हृदयकम्पनोंको, उनकी मानसिक हलचलोंको, मेरे मनके परदेपर, चित्र रूपमें, उपस्थित कर सकती।

उदाहरणत, मेरे सामने इसी पलंगपर, वह जो नारी-मूर्ति बैठी है, उसके व्यक्तित्वके रहस्यको मैं जानना चाहता हूँ, वैसे, उसके बारेमें जितनी गहरी जानकारी मुझे है, शायद और किसीको नहीं।

इस धुंधले अँधेरे कमरेमें वह मुझे सुन्दर दिखाई दे रही है। दीवारपर गिरे हुए प्रत्यावर्तित प्रकाशका पुनः प्रत्यावर्तित प्रकाश, नीली चूड़ियोंवाले हाथोंमें थमे हुए उपन्यासके पन्नोंपर, ध्यानमग्न कपोलोंपर, और आसमानी आँचलपर फैला हुआ है। यद्यपि इस समय, हम दोनों अलग-अलग दुनियामें (वह उपन्यासके जगत्‌में और मैं अपने खयालोंके रास्तोंपर) घूम रहे हैं, फिर भी इस अकेले धुंधले कमरेमें गहन साहचर्यके सम्बन्ध-सूत्र तड़प रहे हैं और महसूस किये जा रहे हैं।

बावजूद इसके, यह कहना ही होगा कि मुझे इसमें 'रोमान्स' नहीं दीखता। मेरे सिरका दाहिना हिस्सा सफेद हो चुका है। अब तो मैं केवल आश्रयका अभिलाषी हूँ, ऊष्मापूर्ण आश्रयका····

फिर भी, मुझे शक है। यौवनके मोह-स्वप्नका गहरा उद्दाम

पूरा न होनेके कारण बैठक ही स्थगित हो जाती। लेकिन श्यामलाको यह कौन बताये कि हमारे आलस्यमें भी एक छिपी हुई, जानी-अनजानी योजना रहती है। वर्त्तमान संचालनका दायित्व जिनपर है, वे खुद संचालक-मण्डलकी बैठक नहीं होने देना चाहते। अगर श्यामलासे कहूँ तो वह पूछेगी, 'क्यों!'

फिर मैं जवाब दूँगा। मैं उसकी आँखोंमे गिरना नहीं चाहता, उसकी नज़रमें और-और चढ़ना चाहता हूँ। उसका प्रेमी जो हूँ; अपने व्यक्तित्वका सुन्दरतम चित्र उपस्थित करनेकी लालसा भी तो रहती है।

वैसे भी, धूप इतनी तेज थी कि बात करने या बात बढ़ानेकी तबी-यत नहीं हो रही थी।

मेरी आँखें सामनेके पीपलके पेड़की तरफ़ गयीं, जिसकी एक डाल, तालाबके ऊपर, बहुत ऊँचाईपर, दूर तक चली गयी थी। उसके सिरेपर एक बड़ा-सा भूरा पक्षी बैठा हुआ था। उसे मैंने चील समझा। लगता था कि वह मछलियोंके शिकारकी ताक लगाये बैठा है।

लेकिन उसी शाखाकी बिलकुल विरुद्ध दिशामें, जो दूसरी डालें ऊँची होकर तिरछी और बाँकी-टेढ़ी हो गयी हैं, उनपर झुण्डके झुण्ड कौवे काँव-काँव कर रहे हैं मानो वे चीलकी शिकायत कर रहे हों और उचक-उचककर, फुदक-फुदककर, मछलीकी ताकमें बैठे उस पक्षीके विरुद्ध प्रचार किये जा रहे हों।

—कि इतनेमें मुझे उस मैदानी-आसमानी चमकीले खुले-खुलेपनमें एकाएक, सामने दिखाई देता है—साँवले नाटे क़दपर भगवे रंगकी खद्दरका बण्डीनुमा कुरता, लगभग चौरस मोटा चेहरा, जिसके दाहिने गालपर एक बड़ा-सा मसा है, और उस मसेमें-में बारीक बाल निकले हुए।

जी धँस जाता है उस सूरतको देखकर। वह मेरा नेता है, संस्था

लोग याद आये। मद्रताकी कल्पना और सुविधाके भाव मुझे मना करने लगे। श्यामलाके भक्कीपनका एक प्रमाण और मिला।

उसने मुझे एक क्षण आँखोंसे तौला और फैसलेके ढंगसे कहा, 'ख़ैर, मैं तो जाती हूँ। देखकर चली जाऊँगी''' बता दूँगी।'

लेकिन चन्द मिनिटों बाद, मैंने अपनेको, चुपचाप, उसके पीछे चलते हुए पाया। तब दिलमें एक अजीब झोल महसूस हो रहा था। दिमागके भीतर सिकुड़न-सी पड गयी थी। पतलून भी ढीला-ढाला लग रहा था, कमीजके 'कॉलर' भी उलटे-सीधे रहे होंगे। बाल अन-सँवरे थे ही। पैरोंको किसी न-किसी तरह आगे ढकेले जा रहा था।

लेकिन, यह सिर्फ दुपहरके गरम तीरोंके कारण था, या श्यामला-के कारण, यह कहना मुश्किल है।

उसने पीछे मुड़कर मेरी तरफ देखा और दिलासा देती हुई आवाज़-में कहा, 'स्कूलका मैदान ज्यादा दूर नहीं है।'

वह मेरे आगे-आगे चल रही थी, लेकिन मेरा ध्यान उसके पैरों और तलुओंके पिछले हिस्सेकी तरफ ही था। उसकी टाँग, जो बिवा-इयों-भरी और धूल-भरी थी, आगे बढ़नेमें, उचकती हुई चप्पलपर चटचटाती थी। ज़ाहिर था कि ये पैर धूल-भरी सड़कोंपर घूमनेके आदी है।

यह खयाल आते ही, उसी खयालसे लगे हुए न मालूम किन धागोंसे होकर, मैं श्यामलासे खुदको कुछ कम, कुछ हीन पाने लगा; और इसकी ग्लानिसे उबरनेके लिए, मैं उस चलती हुई आकृतिके साथ, उसके बराबर हो लिया। वह कहने लगी, 'याद है शामको बैठक है। अभी चलकर न देखते तो कब देखते। और सबके सामने साबित हो जाता कि तुम खुद कुछ करते नहीं। सिर्फ ज़बानकी कैंची चलती है।'

अब श्यामलाको कौन बताये कि न मैं इस भरी दोपहरमें स्कूलका मैदान देखने जाता और न शामको बैठकमें ही। सम्भव था कि 'कोरम'

एक दिनकी बात ! मेरा सजा हुआ कमरा ! चायकी चुस्कियाँ ! क़हक़हे ! एक पीले रंगके तिकोने चेहरेवाला मसखरा, ऊलजलूल शख़्स ! बग़ैर यह सोचे कि जिसकी वह निन्दा कर रहा है, वह मेरा कृपालु मित्र और सहायक है, वह शख़्स बात बढ़ाता जा रहा है।

मैं स्तब्ध ! किन्तु, कान सुन रहे हैं। हारे हुए आदमी-जैसी मेरी सूरत, और मैं !

वह कहता जा रहा है, 'सूक्ष्मदर्शी यन्त्र? सूक्ष्मदर्शी यन्त्र कहाँ हैं ?'

'हैं तो। ये हैं। देखिए।' क्लर्क कहता है। रजिस्टर बताता है। सब कहते हैं—हैं, हैं। ये हैं। लेकिन, कहाँ हैं ? यह तो सब लिखित रूपमें हैं, वस्तु-रूपमें कहाँ हैं।

वे ख़रीदे ही नहीं गये ! झूठी रसीद लिखनेका कमीशन विक्रेताको, शेष रक़म जेबमें। सरकारसे पूरी रक़म वसूल !

किसी ख़ास जाँचके ऐन मौक़ेपर किसी दूसरे शहरकी····संस्थासे उधार लेकर, सूक्ष्मदर्शी यन्त्र हाज़िर ! सब चीज़ें मौजूद हैं। आइए, देख जाइए। जी हाँ, ये तो हैं सामने। लेकिन, जाँच ख़त्म होनेपर सब ग़ायब सब अन्तर्धान। कैसा जादू है। ख़र्चेका आँकड़ा ख़ूब फुलाकर रखिए। सरकारके पास काग़ज़ात भेज दीजिए। ख़ास मौक़ोंपर आफ़िसोंके धुँधले गलियारों और होटलोंके कोनोंमें मुट्ठियाँ गरम कीजिए। सरकारी 'ग्राण्ट' मंज़ूर ! और, उसका न जाने कितना हिस्सा, बड़े ही तरीक़ेसे, संचालकोंकी जेबमें ! जी !'

भरी दोपहरमें मैं आगे बढ़ा जा रहा हूँ। कानोंमें ये आवाज़ें गूँजती जा रही हैं। मैं व्याकुल हो उठता हूँ। श्यामलाका पार्श्व-संगीत चल रहा है। मुझे जबरदस्त प्यास लगती है ! पानी, पानी !

—कि इतनेमें एकाएक विश्वविद्यालयके पुस्तकालयकी ऊँचे रोमन स्तम्भोंवाली इमारत सामने आ जाती है। तीसरा पहर ! हलकी धूप ! इमारतकी पत्थर-सीढ़ियाँ, लम्बी, मोतिया !

का सर्वेसर्वा है। उसकी खयाली तसवीर देखते ही मुझे अचानक दूसरे नेताओंकी और सचिवालयके उस अँधेरे गलियारेकी याद आती है, जहाँ मैंने इस नाटे-मोटे भगवे खद्दर-कुरतेवालेको पहले-पहल देखा था।

उन अँधेरे गलियारोंमे-से मैं कई-कई बार गुजरा हूँ और वहाँ किसी मोडपर, किसी कोनेमे इकट्ठा हुए, ऐसी ही संस्थाओंके संचालकोंके उतरे हुए चेहरोंको देखा है। बावजूद श्रेष्ठ पोशाक और 'अपटूडेट' भेस-के संवलाया हुआ गर्व, बेबस गम्भीरता, अधीर उदासी और थकान उनके व्यक्तित्वपर राख-सी मलती है। क्यों ?

इसलिए कि माली सालकी आखिरी तारीखको अब सिर्फ दो या तीन दिन बचे हैं। सरकारी 'ग्राण्ट' अभी मजूर नही हो पा रही है, कागजात अभी वित्त-विभागमे ही अटके पडे है। आफिसोंके बाहर, गलियारेके दूर किसी कोनेमे, पेशाबघरके पास, या होटलोंके कोनोंमे क्लर्कोंकी मुट्ठियाँ गरम की जा रही हैं, ताकि 'ग्राण्ट' मजूर हो और जल्दी मिल जाये।

ऐसी ही किसी जगहपर मैंने इस भगवे-खद्दर कुरतेवालेको जोर-जोरसे अंगरेजी बोलते हुए देखा था। और, तभी मैंने उसके तेज मिजाज और फितरती दिमागका अन्दाजा लगाया था।

इधर, भरी दोपहरमे, श्यामलाका पार्श्व-संगीत चल ही रहा है, मैं उसका कोई मतलब नही निकाल पाता। लेकिन, न मालूम कैसे, मेरा मन उसकी बातोसे कुछ संकेत ग्रहण कर, अपने ही रास्तेपर चलता रहता है। इसी बीच उसके एक वाक्यसे मैं चौक पडा, 'इससे अच्छा है कि तुम इस्तीफा दे दो। अगर काम नही कर सकते तो गद्दी क्यों अडा रखी है।'

इसी बातको, कई बार, मैंने अपनेसे भी पूछा था। लेकिन आज उसके मुँहसे ठीक उसी बातको सुनकर मुझे धक्का-सा लगा। और मेरा मन कहाँका कहाँ चला गया।

इस स्थितिमें नही हूँ कि उसका स्वागत कर सकूँ। मैं वदहवास हो उठता हूँ।

वह, धीमे-धीमे, मेरे पास आती है। अभ्यर्थनापूर्ण मुसकराहटके साथ कहती है, 'पढ़ी है आपने यह पुस्तक।'

काली जिल्दपर सुनहले रोमन अक्षरोंमें लिखा है, 'आई विल नाट रेस्ट।'

मैं साफ़ झूठ वोल जाता हूँ, 'हाँ पढ़ी है, वहुत पहले।'

लेकिन, मुझे महसूस होता है कि मेरे चेहरेपर-से तेलिया पसीना निकल रहा है। मैं वार-वार अपना मुँह पोंछता हूँ रूमालसे। वालोंके नीचे ललाट—हाँ, ललाट (यह शब्द मुझे अच्छा लगता है) को रगड़कर साफ़ करता हूँ।

और, फिर दूर एक पेड़के नीचे, इधर आते हुए, भगवे खद्दर-कुरते-वालेकी आकृतिको देखकर श्यामलासे कहता हूँ—'अच्छा, मैं ज़रा उधर जा रहा हूँ। फिर, भेंट होगी।' और, सभ्यताके तक़ाज़ेसे मैं उसके लिए नमस्कारके रूपमें मुसकरानेकी चेष्टा करता हूँ।

पेड़।

अजीव पेड़ है, (यहाँ रुका जा सकता है), वहुत पुराना पेड़ है, जिसकी जड़ें उखड़कर वीचमें-से टूट गयी हैं और सावित है, उनके आस-पासकी मिट्टी खिसक गयी है। इसलिए वे उभरकर ऐंठी हुई-सी लगती हैं। पेड़ क्या है, लगभग ठूँठ है। उसकी शाखाएँ काट डाली गयी हैं।

लेकिन, कटी हुई वाँहोंवाले उस पेड़में-से नयी डालें निकलकर, हवामें खेल रही हैं। उन डालोंमें कोमल-कोमल हरी-हरी पत्तियाँ झालर-सी दिखाई देती हैं। पेड़के मोटे तनेमें-से जगह-जगह ताज़ा गोंद निकल

सीढ़ियोंसे लगकर, अभरक-मिली लाल मिट्टीके चमचमाते रास्तेपर सुन्दर काली 'शेवरलेट'।

भगवे खद्दर-कुरतेवालेकी 'शेवरलेट', जिसके ज़रा पीछे मैं खड़ा हूँ, और देख रहा हूँ—यों ही—कारका नम्बर—कि इतनेमें उसके चिकने काले हिस्सेमें, जो आईने-सा चमकदार है, मेरी सूरत दिखाई देती है।

भयानक है वह सूरत ! सारे अनुपात बिगड़ गये हैं। नाक डेढ़ गज़ लम्बी और कितनी मोटी हो गयी है। चेहरा बेहद लम्बा और सिकुड़ गया है। आँखें खड्डेदार। कान नदारद। भूत-जैसा अप्राकृतिक रूप। मैं अपने चेहरेकी उस विद्रूपताको, मुग्ध भावसे, कुतूहलसे और आश्चर्यसे देख रहा हूँ, एकटक।

कि इतनेमें मैं दो कदम एक ओर हट जाता हूँ; और पाता हूँ कि मोटरके उस काले चमकदार आईनेमें, मेरे गाल, ठुड्डी, नाक, कान सब चौड़े हो गये हैं, एकदम चौड़े। लम्बाई लगभग नदारद। मैं देखता ही रहता हूँ, देखता ही रहता हूँ कि इतनेमें दिलके किसी कोनेमें कोई अँधियारी गटर एकदम फूट निकलती है। वह गटर है आत्मालोचन, दु:ख और ग्लानिकी।

और, सहसा, मुँहसे हाय निकल पड़ती है। उस भगवे खद्दर-कुरते-वालेसे मेरा छुटकारा कब होगा, कब होगा।

और, तब लगता है कि इस सारे जालमें, बुराईकी इस अनेक चक्रोंवाली दैत्याकार मशीनमें, न जाने कबसे मैं फँसा पड़ा हूँ। पैर भिच गये हैं, पसलियाँ चूर हो गयी हैं, चीख़ निकल नहीं पाती, आवाज़ हलक-में फँसकर रह गयी है।

कि इसी बीच अचानक एक नज़ारा दिखाई देता है। रोमन स्तम्भोंवाली विश्वविद्यालयके पुस्तकालयकी ऊँची, लम्बी, मोतिया सीढ़ियोंपर-से उतर रही है एक आत्म-विश्वासपूर्ण गौरवमय नारीमूर्ति।

वह किरणीली मुसकान मेरी ओर फेंकती-सी दिखाई देती है। मैं

प्रदान नहीं कर सकता, आश्रय प्रदान नहीं कर सकता, (क्योंकि वह जगह-जगह काटा गया है) वह तो कटी शाखाओंकी दूरियों और अन्तरालोंमें-से केवल तीव्र और कष्टप्रद प्रकाशको ही मार्ग दे सकता है।

लेकिन, मैदानोंके इस चिलचिलाते अपार विस्तारमें, एक पेड़के नीचे, अकेलेपनमें, श्यामलाके साथ रहनेकी यह जो मेरी स्थिति है उसका अचानक मुझे गहरा बोध हुआ। लगा कि श्यामला मेरी है, और वह भी इसी भाँति चिलमिलाते गरम तत्त्वोंसे बनी हुई नारी-मूर्ति है। गरम बफती हुई मिट्टी-सा चिलचिलाता हुआ, उसमें अपनापन है।

तो क्या, आज ही, अगली अनगिनत गरम दोपहरियोंके पहले, आज ही, अगले क़दम उठाये जानेके पहले, इसी समय, हाँ, इसी समय, उसके सामने, अपने दिलकी गहरी छिपी हुई तहें और सतहें खोल-कर रख दूँ···कि जिससे आगे चलकर, उसे ग़लतफ़हमीमें रखने, उसे धोखेमें रखनेका अपराधी न बनूँ।

कि इतनेमें, मेरी आँखोंके सामने, फिर उसी भगवे खद्दर-कुरतेवाले-की तसवीर चमक उठी। मैं व्याकुल हो गया, और उससे छुटकारा चाहने लगा।

तो फिर आत्म-स्वीकार कैसे करूँ, कहाँसे शुरू करूँ!

लेकिन, क्या वह मेरी बातें समझ सकेगी? किसी तनी हुई रस्सी-पर वज़न साधते हुए चलनेका, 'हाँ,' और 'ना' के बीचमें रहकर ज़िन्दगीकी उलझनोंमें फँसनेका तजुर्बा उसे कहाँ है।

हटाओ, कौन कहे।

लेकिन, यह स्त्री शिक्षिता तो है! बहस भी तो करती है! बहस-की बातोंका सम्बन्ध न उसके स्वार्थसे होता है, न मेरे। उस समय हम लड़ भी तो सकते हैं। और ऐसी लड़ाइयोंमें कोई स्वार्थ भी तो नहीं होता। सामने अपने दिलकी सतहें खोल देनेमें न मुझे शर्म रही न

रहा है। गोंदकी साँवली कत्थई गठानें मज़ेमें देखी जा सकती हैं।

··अजीब पेड़ है, अजीब ! (शायद, यह अच्छाईका पेड़ है) इसलिए कि एक दिन शामको मोतिया-गुलाबी आभामें मैंने एक युवक-युवती-को इस पेड़के तले ऊँची उठी हुई उभरी हुई जड़पर आरामसे बैठे हुए पाया था। सम्भवतः, वे अपने अत्यन्त आत्मीय क्षणोंमें डूबे हुए थे।

मुझे देखकर युवकने आदरपूर्वक नमस्कार किया। लड़कीने भी मुझे देखा और झेंप गयी। हलके झटकेसे उसने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। लेकिन, उसकी झेंपती हुई ललाई मेरी नज़रोंसे न बच सकी।

इस प्रेम-मुग्धको देखकर मैं भी एक विचित्र आनन्दमें डूब गया। उन्हें निरापद करनेके लिए, जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ मैं वहाँसे नौ-दो ग्यारह हो गया।

यह पिछली गरमियोंकी एक मनोहर साँझकी बात है। लेकिन आज इस भरी दोपहरीमें श्यामलाके साथ पल-भर उस पेड़के तले बैठने-को मेरी भी तबीयत हुई। बहुत ही छोटी और भोली इच्छा है यह।

लेकिन, मुझे लगा कि शायद, श्यामला मेरे सुझावको नहीं मानेगी। स्कूल-मैदान पहुँचनेकी उसे जल्दी जो है। कहनेकी मेरी हिम्मत ही नहीं हुई।

लेकिन, दूसरे क्षण, आप-ही-आप, मेरे पैर उस ओर बढ़ने लगे। और, ठीक उसी जगह मैं भी जाकर बैठ गया, जहाँ एक साल पहले वह युग्म बैठा था। देखता क्या हूँ कि श्यामला भी आकर बैठ गयी है।

तब वह कह रही थी, 'सचमुच बड़ी गरम दोपहर है।'

सामने, मैदान-ही-मैदान हैं, भूरे मटमैले ! उनपर सिरस और सीमम्के छायादार विराम-चिह्न खड़े हुए हैं। मैं लुब्ध और मुग्ध होकर उनकी घनी-गहरी छायाएँ देखता रहता हूँ·······

·····क्योंकि···क्योंकि मेरा यह पेड़, यह अच्छाईका पेड़, छाया

मैंने विरोध-भावसे श्यामलाकी तरफ़ देखा। वह मेरा रुख़ देखकर समझ गयी। वह कुछ नहीं बोली। लेकिन, मानो मैंने उसकी आवाज़ सुन ली हो।

श्यामलाका चेहरा 'चार जनियों-जैसा' है। उसपर साँवली मोहक दीप्तिका आकर्षण है। किन्तु, उसकी आवाज़""हाँ आवाज़"" वह इतनी सुरीली और मीठी है कि उसे अनसुना करना निहायत मुश्किल है। उस स्वरको सुनकर, दुनियाकी अच्छी बातें ही याद आ सकती हैं।

पता नहीं किस तरहकी परेशान पेचीदगी मेरे चेहरेपर झलक उठी कि जिसे देखकर उसने कहा, 'कहो, कहो, क्या कहना चाहते हो।'

यह वाक्य मेरे लिए निर्णायक बन गया। फिर भी अवरोध शेष था। अपने जीवनका सार-सत्य अपना गुप्त-धन है। उसके अपने गुप्त संघर्ष हैं, उसका अपना एक गुप्त नाटक है। वह प्रकट करते नहीं बनता। फिर भी, शायद है कि उसे प्रकट कर देनेसे उसका मूल्य बढ़ जाये, उसका कोई विशेष उपयोग हो सके।

एक था पक्षी। वह नीले आसमानमें खूब ऊँचाईपर उड़ता जा रहा था। उसके साथ उसके पिता और मित्र भी थे।

(श्यामला मेरे चेहरेकी तरफ़ आश्चर्यसे देखने लगी)

सब, बहुत ऊँचाईपर उड़नेवाले पक्षी थे। उनकी निगाहें भी बड़ी तेज़ थीं। उन्हें दूर-दूरकी भनक और दूर-दूरकी महक भी मिल जाती।

एक दिन वह नौजवान पक्षी ज़मीनपर चलती हुई एक बैलगाड़ीको देख लेता है। उसमें बड़े-बड़े बोरे भरे हुए हैं। गाड़ीवाला चिल्ला-चिल्लाकर कहता है, 'दो दीमकें लो, एक पंख दो।'

उस नौजवान पक्षीको दीमकोंका शौक़ था। वैसे तो ऊँचे उड़ने-

मेरे सामने उसे। लेकिन, वैसा करनेमें तकलीफ़ तो होती ही है, अजीब और पेचीदा, घूमती-घुमाती तकलीफ !

और उस तकलीफको टालनेके लिए हम झूठ भी तो बोल देते हैं, सरासर झूठ, सफेद झूठ! लेकिन झूठसे सचाई और गहरी हो जाती है, अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक प्राणवान, मानो वह हमारे लिए और सारी मनुष्यताके लिए विशेष सार रखती हो। ऐसी सतहपर हम भावुक हो जाते हैं। और, यह सतह अपने सारे निजीपनमें बिलकुल बे-निजी है। साथ ही, मीठी भी! हाँ, उस स्तरकी अपनी विचित्र पीडाएँ हैं, भयानक सन्ताप है, और इस अत्यन्त आत्मीय किन्तु निर्वैयक्तिक स्तरपर, हम एक हो जाते हैं, और कभी-कभी ठीक उसी स्तरपर बुरी तरह लड भी पडते हैं।

श्यामलाने कहा, 'उस मैदानको समतल करनेमें कितना खर्च आयेगा?'

'बारह हज़ार।'

'उनका अन्दाज क्या है?'

'बीस हज़ार।'

'तो बैठकमें जाकर समझा दोगे और यह बता दोगे कि कुल मिलाकर बारह हज़ारसे ज्यादा नामुमकिन है?'

'हाँ, उतना मैं कर दूँगा।'

'उतनाका क्या मतलब?'

अब मैं उसे 'उतना' का क्या मतलब बताऊँ! साफ है कि उस भगवे खद्दर-कुरतेवालेसे मैं दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहता। मैं उसके प्रति वफादार रहूँगा क्योंकि मैं उसका आदमी हूँ। भले ही वह बुरा हो, भ्रष्टाचारी हो, किन्तु उसीके कारण मेरी आमदनीके जरिए बने हुए है! व्यक्ति-निष्ठा भी कोई चीज है, उसके कारण ही मैं विश्वास-योग्य माना गया हूँ। इसीलिए, मैं कई महत्त्वपूर्ण कमेटियोंका सदस्य हूँ।

दीमकोंका शौक़ अब भी उसपर हावी हो गया था।

(श्यामला अपनी फैली हुई आँखोंसे मुझे देख रही थी, उसकी ऊपर उठी हुई पलकें और भवें बड़ी ही सुन्दर दिखाई दे रही थीं।)

लेकिन, ऐसा कै दिनों तक चलता। उसके पंखोंकी संख्या लगातार घटती चली गयी। अब वह, ऊँचाइयोंपर, अपना सन्तुलन साध नहीं सकता था, न बहुत समय तक पंख उसे सहारा दे सकते थे। आकाश-यात्राके दौरान उसे जल्दी-जल्दी पहाड़ी चट्टानों, पेड़ोंकी चोटियों, गुम्बदों और बुर्जोंपर हाँफते हुए बैठ जाना पड़ता। उसके परिवारवाले तथा मित्र ऊँचाइयोंपर तैरते हुए आगे बढ़ जाते। वह बहुत पिछड़ जाता। फिर भी दीमक खानेका उसका शौक़ कम नहीं हुआ। दीमकोंके लिए गाड़ीवालेको वह अपने पंख तोड़-तोड़कर देता रहा।

(श्यामला गम्भीर होकर सुन रही थी। अबकी बार उसने 'हूँ' भी नहीं कहा।)

*फिर, उसने सोचा कि आसमानमें उड़ना ही फ़िज़ूल है। वह मूर्खों-*का काम है। उसकी हालत यह थी कि अब वह आसमानमें उड़ ही नहीं सकता था, वह सिर्फ़ एक पेड़से उड़कर दूसरे पेड़ तक पहुँच पाता। धीरे-धीरे उसकी यह शक्ति भी कम होती गयी। और एक समय वह आया जब वह बड़ी मुश्किलसे, पेड़की एक डालसे लगी हुई दूसरी डाल-पर, चलकर, फुदककर पहुँचता। लेकिन दीमक खानेका शौक़ नहीं छूटा।

बीच-बीचमें गाड़ीवाला बुत्ता दे जाता। वह कहीं नज़रमें न आता। पक्षी उसके इन्तज़ारमें घुलता रहता।

लेकिन, दीमकोंका शौक़ जो उसे था। उसने सोचा, 'मैं खुद दीमकें ढूँढ़ूँगा।' इसलिए वह पेड़पर-से उतरकर ज़मीनपर आ गया; और घासके एक लहराते गुच्छेमें सिमटकर बैठ गया।

(श्यामला मेरी ओर देखे जा रही थी। उसने अपेक्षापूर्वक

'नहीं, मुझमें अभी बहुत कुछ शेष है, बहुत कुछ। मैं उस पक्षी-जैसा नहीं मरूँगा। मैं अभी भी उबर सकता हूँ। रोग अभी असाध्य नहीं हुआ है। ठाठसे रहनेके चक्करसे बँधे हुए बुराईके चक्कर तोड़े जा सकते हैं। प्राणशक्ति शेष है, शेष।'

तुरन्त ही लगा कि श्यामलाके सामने फ़िजूल अपना रहस्य खोल दिया, व्यर्थ ही आत्म-स्वीकार कर डाला। कोई भी व्यक्ति इतना परम प्रिय नहीं हो सकता कि भीतरका नंगा बालदार, रीछ उसे बताया जाये। मैं असीम दुःखके खारे मृत सागरमें डूब गया।

श्यामला अपनी जगहसे धीरेसे उठी, साड़ीका पल्ला ठीक किया, उसकी सलवटें बराबर जमायीं, बालोंपर-से हाथ फेरा। और फिर (अँगरेजीमें) कहा, 'सुन्दर कथा है, बहुत सुन्दर!'

फिर, वह क्षण-भर खोयी-सी खड़ी रही, और फिर बोली, 'तुमने कहाँ पढ़ी?'

मैं अपने ही शून्यमें खोया हुआ था। उसी शून्यके बीचमें-से मैंने कहा, 'पता नहीं''''किसीने सुनायी या मैंने कहीं पढ़ी।'

और, वह श्यामला अचानक मेरे सामने आ गयी, कुछ कहना चाहने लगी, मानो उस कहानीमें उसकी किसी बातकी ताईद होती हो।

उसके चेहरेपर धूप पड़ी हुई थी। मुखमण्डल सुन्दर और प्रदीप्त दिखाई दे रहा था।

कि इसी बीच हमारी आँखें सामनेके रास्तेपर जम गयीं।

घुटनों तक मैली धोती और काली, नीली, सफ़ेद या लाल बण्डी पहने कुछ देहाती भाई, समूहमें, चले आ रहे थे। एकके हाथमें एक बड़ा-सा डण्डा था, जिसे वह अपने आगे, सामने, किये हुए था। उस डण्डेपर एक लम्बा मरा हुआ साँप झूल रहा था। काला भुजंग, जिसके पेटकी हलकी सफ़ेदी भी झलक रही थी।

श्यामलाने देखते ही पूछा, 'कौन-सा साँप है यह?' वह ग्रामीण

कहा 'हूँ ।')

फिर, एक दिन उस पक्षीके जीमे न मालूम क्या आया । वह ख़ूब मेहनतसे जमीनमे-से दीमकें चुन-चुनकर, खानेके बजाय, उन्हे इकट्ठा करने लगा । अब उसके पास दीमकोके ढेरके ढेर हो गये ।

फिर, एक दिन एकाएक, वह गाड़ीवाला दिखाई दिया । पक्षीको बड़ी खुशी हुई । उसने पुकारकर कहा, 'गाडीवाले, ओ गाड़ीवाले ! मैं कबसे तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा था।'

पहचानी आवाज़ सुनकर गाडीवाला रुक गया । तब पक्षीने कहा, 'देखो, मैंने कितनी सारी दीमकें जमा कर ली हैं ।'

गाडीवालेको पक्षीकी बात समझमे नही आयी । उसने सिर्फ़ इतना कहा, 'तो मैं क्या करूँ ।'

'ये मेरी दीमकें ले लो, और मेरे पंख मुझे वापस कर दो ।' पक्षीने जवाब दिया ।

गाड़ीवाला ठठाकर हँस पड़ा । उसने कहा, 'बेवकूफ, मैं दीमकके बदले पंख लेता हूँ, पखके बदले दीमक नही ।'

गाड़ीवालेने 'पख' शब्दपर बहुत ज़ोर दिया था ।

(श्यामला ध्यानसे सुन रही थी । उसने कहा, 'फिर')

गाड़ीवाला चला गया । पक्षी छटपटाकर रह गया । एक दिन एक काली बिल्ली आयी और अपने मुँहमे उसे दबाकर चली गयी । तब उस पक्षीका ख़ून टपक-टपककर जमीनपर बूँदोकी लकीर बना रहा था ।

(श्यामला ध्यानसे मुझे देखे जा रही थी; और उसको एकटक निगाहोंसे बचनेके लिए मेरी आँखें तालाबकी सिहरती-काँपती, चिलकती-चमचमाती लहरोंपर टिकी हुई थी)

कहानी कह चुकनेके बाद, मुझे एक ज़बरदस्त झटका लगा । एक भयानक प्रतिक्रिया—कोलतार-जैसी काली, गन्धक-जैसी पीली-नारंगी !

है जो जंगलमें अपने बेईमान और बेवफ़ा साथीका सिर धड़से अलग कर देती है। बारीक बेईमानियोंका सूफ़ियाना अन्दाज़ उसमें कहाँ।

किन्तु, फिर भी आदिवासियों-जैसे उस अमिश्रित आदर्शवादमें मुझे आत्माका गौरव दिखाई देता है, मनुष्यकी महिमा दिखाई देती है, मैंने तर्ककी अपनी अन्तिम प्रभावोत्पादक परिणतिका उल्लास दिखाई देता है—और ये सब बातें मेरे हृदयको स्पर्श कर जाती हैं। तो, अब मैं इसके लिए क्या करूँ, क्या करूँ!

और अब मुझे सज्जायुक्त भद्रताके मनोहर वातावरणवाला अपना कमरा याद आता है···अपना अकेला धुँधला-धुँधला कमरा। उसके एकान्तमें प्रत्यावर्तित और पुनः प्रत्यावर्तित प्रकाशके कोमल वातावरणमें मूल-रश्मियाँ और उनके उद्‌गम-स्रोतोंपर सोचते रहना, खयालोंकी लहरोंमें बहते रहना कितना सरल, सुन्दर और भद्रता-पूर्ण है। उससे न कभी गरमी लगती है, न पसीना आता है, न कभी कपड़े मैले होते हैं। किन्तु प्रकाशके उद्‌गमके सामने रहना, उसका सामना करना, उसकी चिलचिलाती दोपहरमें रास्ता नापते रहना और धूल फाँकते रहना कितना त्रास-दायक है। पसीनेसे तरबतर कपड़े इस तरह चिपचिपाते हैं और इस क़दर गन्दे मालूम होते हैं कि लगता है····कि अगर कोई इस हालतमें हमें देख ले तो वह बेशक हमें निचले दर्जेका आदमी समझेगा। सजे हुए टेबलपर रखे क़ीमती फाउण्टेनपेन-जैसे नीरव-शब्दांकन-वादी हमारे व्यक्तित्व जो बहुत बड़े ही ख़ुशनुमा मालूम होते हैं—किन्हीं महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोंके कारण—जब वे आँगनमें और घर-बाहर चलती हुई झाड़ू-जैसे काम करनेवाले दिखाई दें, तो इस हालतमें वे यदि सड़क-छाप समझे जायें तो इसमें आश्चर्यकी ही क्या बात है!

लेकिन, मैं अब ऐसे कामोंकी शर्म नहीं करूँगा, क्योंकि जहाँ मेरा हृदय है, वहीं मेरा भाग्य है!

●

मुख, छत्तीसगढ़ी लहजेमे, चिल्लाया, 'करेट है बाई, करेट।'

श्यामलाके मुँहसे निकल पड़ा, 'ओफ्फो ! करेट तो बड़ा जहरीला साँप होता है।'

फिर, मेरी ओर देखकर, कहा, 'नागकी तो दवा भी निकली है, करेटकी तो कोई दवा नही है। अच्छा किया, मार डाला। जहाँ साँप देखो, मार डालो, फिर, वह पनियल साँप ही क्यो न हो।'

और फिर, न जाने क्यो, मेरे मनमे उसका यह वाक्य गूँज उठा, 'जहाँ साँप देखो, मार डालो।'

और ये शब्द मेरे मनमें गूँजते ही चले गये।

कि इसी बीच ''रजिस्टरमे चढ़े हुए आँकड़ोकी एक लम्बी मीज़ान मेरे सामने फूल उठी और गलियारेके अँधेरे कोनोमे गरम होनेवाली मुट्ठियोंका चोर-हाथ।

श्यामलाने पलटकर कहा, 'तुम्हारे कमरेमे भी तो साँप घुस आया था, कहाँसे आया था वह ?'

फिर उसने खुद ही जवाब दे लिया, 'हाँ, वह पासकी खिड़कीमे-से आया होगा।'

खिड़कीकी बात सुनते ही मेरे सामने, बाहरकी कँटीदार झाडियाँ, बेंतकी झाडियाँ आ गयी, जिसे जंगली बेलने लपेट रखा था। मेरे खुदके तीखे काँटोके बावजूद, क्या श्यामला मुझे इसी तरह लपेट सकेगी। बड़ा ही 'रोमाण्टिक' खयाल है, लेकिन कितना भयानक।

'''क्योकि श्यामलाके साथ अगर मुझे जिन्दगी बसर करनी है तो न मालूम कितने ही भगवे खद्दर-कुरतेवालोसे मुझे लड़ना पड़ेगा, जी कड़ा करके लड़ाइयाँ मोल लेनी पडेगी और अपनी आमदनीके जरिये खत्म कर देने होगे। श्यामलाका क्या है! वह तो एक गान्धीवादी कार्यकर्ताकी लड़की है, आदिवासियोंकी एक संस्थामें काम करती है। उसका आदर्शवाद भी भोले-भाले आदिवासियोंकी उस कुल्हाड़ी-जैसा

अगर कोई भी मुझे उस वक़्त देखता तो पाता कि मैं कितने इत्मीनान और आत्म-विश्वासके साथ क़दम बढ़ा रहा हूँ। इतनी शान मुझे पहले कभी महसूस नहीं हुई थी। यह बात अलग है कि गरम ओवरकोट उधार लिया हुआ है। राजनांदगाँवसे जबलपुर जाते समय एक मित्रने कृपापूर्वक उसे प्रदान किया था। इसमें सन्देह नहीं कि समाजमें अगर अच्छे आदमी न रहें, तो वह एक क्षण न चले।

सिगरेट पीते हुए मैं मुसाफ़िरखानेकी तरफ़ देखता हूँ। वहाँ आदमी नहीं, आदमीनुमा गन्दा सामान इधर-उधर बिखेर दिया गया है। उनकी तुलनामें सचमुच मैं कितना शानदार हूँ।

अनजाने ही मैं अकड़कर चलने लगता हूँ; और किसीको ताव बतानेकी, किसीपर रौब झाड़नेकी तबीयत होती है। इन सब टूटे हुए अक्षर (प्रेस टाइप)-जैसे लोगोंके बीच गुज़रकर अपनेको काफ़ी ऊँचा और प्रभावशाली समझने लगता हूँ। सच कहता हूँ, इस समय मेरे पास पैसे भी हैं। अगर कोई भिखारी इस समय आता तो मैं अवश्य ही उसे कुछ प्रदान करता। लेकिन, भिखारी बेवक़ूफ़ थोड़े ही था, जो वहाँ आये; वहाँ तो सभी लगभग भिखारी थे।

सोचा कि ट्रंक खोलकर सामान निकालकर कुछ ज़रूरी चिट्ठियाँ लिख डालूँ। मैंने एक सम्माननीय नेताको इसी प्रकार समय सदुपयोग करते हुए देखा था। अभी उजाला काफ़ी था। दो-चार चिट्ठियाँ रगड़ी जा सकती थीं। ट्रंकके पास मैं गया भी। उसे खोल भी दिया। लेकिन, क़लम उठानेके बजाय, मैंने पीतलका एक डिब्बा उठा लिया। ढक्कन खोलकर, मैंने उसमें-से एक 'गाकर लड्डू' निकाला और मुँहमें भर लिया। बहुत स्वादिष्ट था वह। उसमें गुड़ और डालडा घी मिला हुआ था। इसी बीच मुझे घरके बच्चोंकी याद आयी। और मैंने दूसरा लड्डू मुँहमें डालनेकी प्रवृत्तिपर पाबन्दी लगा दी।

तभी मुझे गान्धीजीकी याद आयी। क्या सिखाया है उन्होंने? पर-

जंक्शन

रेलवे स्टेशन, लम्बा और सूना ! कड़ाकेकी सर्दी ! मैं ओवरकोट पहने हुए इत्मीनानसे सिगरेट पीता हुआ घूम रहा हूँ।

मुझे इस स्टेशनपर अभी पाँच घण्टे रुकना है। गाड़ी रातके साढ़े बारह बजे आयेगी।

रुकना, रुकना, रुकना ! रुकते-रुकते चलना ! अजीब मनहूसियत है !

प्लेटफॉर्मके पाससे गुज़रनेवाली लोहेकी पटरियाँ सूनी हैं। शण्टिंग भी नहीं है। पटरियोंके उस पार, थोड़ी ही दूरीपर रेलवेका अहाता है, अहाताके उस पार सड़क है ! शामके छह बजे ही सड़कपर और उससे लगे हुए नये मकानोंमें बिजलियाँ झिलमिलाने लगी हैं !

उदास और मटमैली शाम। एक बार टी-स्टॉलपर जाकर चाय पी आया हूँ। फिर कहाँ जाऊँ ! शहरमें जाकर भोजन कर आऊँ ? लेकिन, यहाँ सामान कौन देखेगा। आस-पास बैठे हुए मुसाफिर फटी चादरों और धोतियोंको ओढ़े हुए, सिमटे-सिमटे, ठिठुरे-ठिठुरे चुपचाप बैठे हैं। इनके भरोसे सामान कैसे लगाया जाये ! कोई भी उसमें-से कुछ उठाकर चम्पत हो सकता है।

टी-स्टॉलकी तरफ नज़र डालता हूँ। इक्के-दुक्के मुसाफ़िर घुटने छातीसे चिपकाये बैठे हुए दिखाई दे रहे हैं। गरम ओवरकोट पहनकर चलनेवाला सिर्फ़ मैं हूँ, मैं।

कैसा मनहूस प्लेटफ़ॉर्म है ?

मेरे बिस्तरके पास एक सीमेण्टकी बेंच है। वहाँ गठरियाँ रखी हुई हैं। सोचता हूँ, उसपर अपना ट्रंक क्यों न रख दूँ। गठरियाँ नीचे भी डल सकती हैं। ट्रंक, उनसे उम्दा चीज़ है; उसे साफ़-सुथरी बेंचपर होना चाहिए।

लेकिन, उठनेकी हिम्मत नहीं होती। कड़ाकेका जाड़ा है। अलवानके बाहर मुँह निकालनेकी तबीयत नहीं हो रही है। लेकिन, नींद भी तो आखोंसे दूर है।

विचित्र समस्या है। खुद ही अकेलेमें, अपनेको अकेले ही शानदार समझते रहो। इसमें क्या धरा है। शानका सम्बन्ध अपनेसे ज़्यादा दूसरोंसे है। यह अब मालूम हुआ। लेकिन, किस मुश्किलमें।

इसी बीच, एकाएक, न मालूम कहाँसे, चार फ़ीटका एक गोरा चिट्टा लड़का सामने आ जाता है। वह टेरीलीनका कुरता पहने हुए है। खाकी चड्डी है। चेहरा लगभग गोल है। गोरे चेहरेपर भवोंकी धुँधली लकीर दिखाई देती है। या उनका भी रंग गोरा है।

वह सामने खड़े-ही-खड़े एक चमड़ेके छोटे-से बगकी ओर इशारा करते हुए कहता है, 'सा 'ब, ज़रा ध्यान रखिएगा। मैं अभी आया।' एकाएक इस तरह किसीका आकर कुछ कहना मुझे अच्छा लगा ! उसकी आवाज़ कमजोर है। लेकिन, उस आवाज़में भले घरकी झलक है। उसके साफ़-सुथरे क़पड़ोंसे भी यही बात झलकती है।

मैं 'हाँ' कह ही रहा था कि उसके पहले लड़का चला गया। मैं उसके बारेमें सोचता रहा, न जाने क्या।

आधे घण्टे बाद वह फिर आया। और चुपचाप चमड़ेके बैगके पास जाकर बैठ गया। सर्दीके मारे उसने अपनी हथेलियाँ खाकी चड्डीकी जेबमें डाल रखी थीं। मैंने गुलाबी अलवानके नीचेसे मुँह उठाकर उसे देखा।

दु:ख-कातरता। इन्द्रिय-संयम। यह मैं क्या कर रहा हूँ। यद्यपि लड्डू मेरे ही लिए दिये गये हैं और मैं पूर्णतया उन्हें खानेका नैतिक अधिकार भी रखता हूँ। लेकिन क्या यह सच नही है कि बच्चोंको सिर्फ़ आधा-आधा ही दिया गया है। फिर मैं तो एक खा चुका हूँ।

पानी पीनेके लिए निकलता हूँ। मुसाफिर वैसे ही ठिठुरे-ठिठुरे सिमटे-सिमटे बैठे हैं। उनके पास गरम कोट तो क्या, साधारण कपड़े भी नहीं हैं। उनमें-से कुछ बीड़ी पी रहे हैं। किसीके पास गरम कोट नही है, सिवाय मेरे। मैं अकड़ता हुआ स्टालपर पानीकी तलाशमे जाता हूँ।

मैं पूर्ण आत्म-सन्तोषका आनन्द-लाभ करता हुआ वापस लौटता हूँ कि अब इस कार्यक्रमके बाद कौन-सा महान् कार्य करूँ।

दूरसे देखता हूँ कि सामान सुरक्षित है। शाम डूब रही है। अँधेरा छा गया है। अभी कमसे कम चार घण्टे यहीं पड़े रहना है। एक पोर्टरसे बात करते हुए कुछ समय और गुजार देता हूँ।

और फिर होल्डाल निकालकर विस्तर बिछा देता हूँ। सुन्दर, गुलाबी अलवान और खुशनुमाँ कम्बल निकल पड़ता है। मैं अपनेको वाकई भला आदमी समझने लगता हूँ यद्यपि यह सच है कि दोनों चीजोंमें-से एक भी मेरी अपनी नही है।

ओवरकोट समेत मैं विस्तरपर ढेर हो जाता हूँ। टूटी हुई चप्पलें बिस्तरके नीचे सिरके पास इस तरह जमा कर देता हूँ कि मानो वह धन हो। धन तो वह हुई है। कोई उसे मार ले तो! तब पता चलेगा!

गुलाबी अलवान ओढ़कर पड़ रहता हूँ। अभीतक स्टेशनपर कपड़ोंके मामलेमें मुझे चुनौती देनेवाला कोई नही आया (शायद यह इलाका बहुत गरीब है)। कहीं भी, एक भी खुशहाल, सुन्दर, परिपुष्ट आकृति नहीं दिखाई दी।

निकाले। फिर सोचा, एक लड्डू भी निकाल लूँ। किन्तु, यह विचार आया कि लड़का टेरीलीनका बुश्शर्ट पहने है। फिर लड्डू गुड़के हैं। वह उसका अनादर कर सकता है।

उसके हाथमें, डबलरोटीके दो टुकड़े और चायवालेसे लिया हुआ एक चायका कॅप देते हुए कहा, 'तुमने अभी कुछ नहीं खाया है। लो, इसे लो।'

'नहीं-नहीं मैंने अभी भजिये खाये हैं।' और लड़केके नन्हें हाथोंने तुरन्त ही लपककर उसे ले लिया। उसको खाते-पीते देखकर मेरी आत्मा तृप्त हो रही थी।

मैंने पूछा, 'बालाघाटसे कब चले थे ?'

'तीन बजे'

'तीन बजेसे तुमने कुछ नहीं खाया ?'

'नहीं तो, दो आनेके भजिया खाये थे। चाय पी थी।'

मेरा ध्यान फिर उसके माता-पिताकी ओर गया और मैं मन-ही-मन उन्हें गाली देने लगा।

मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैंने लड़केसे कहा, 'आओ, बिस्तर-पर चले आओ। साढ़े दस बजे उठा दूँगा।'

लड़केने तुरन्त ही चमड़ेके अपने क़ीमती जूतेके बन्द खोले. मोजे निकाले। सिरहाने रख दिया। और बिस्तरके भीतर पड़ गया।

मैं ट्रंकके पास बैठा हुआ था। लड़का मेरे बिस्तरेपर। मैं खुद जाड़ेमें। वह गरमी महसूस करता हुआ।

किन्तु मेरा ध्यान उस लड़केकी तरफ़ था। कितना भोला विश्वास है उसके चेहरेपर।

और मैं सोचने लगा कि मनुष्यता इसी भोले विश्वासपर चलती है। और इस भोले विश्वासके वातावरणमें ही कपट और छल करने-वाले पनपते हैं।

भले ही वह टेरीलीनका बुश्शर्ट पहने हो, वह खूब ठिठुर रहा था। बुश्शर्टके नीचे एक अण्डरवीयर था। बस ! उसके पास ओढने-बिछानेके भी कपड़े नही थे।

कुछ कुतूहल और कुछ चिन्तासे मैंने पूछा, 'तुम ओढ़नेके कपड़े लेकर क्यों नहीं आये। कितना जाड़ा है। ऐसे कैसे निकल आये।'

उसने जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था कि यहाँसे करीब पचास मील दूर शहर बालाघाटमें एक बारात उतरी थी। उसमें वह, उसके घरवाले और दूसरे रिश्तेदार भी थे। एक रिश्तेदार वहाँसे आज ही नागपुर चल दिया, लेकिन अपना चमड़ेका बैग भूल गया। चूंकि वहाँवालोंको मालूम था कि गाडी नागपुरवाली उस स्टेशनसे बहुत देरसे छूटती है, इसलिए उन्होंने इस लडकेके साथ यह बैग भेज दिया।

लेकिन, अब यह लड़का कह रहा है कि रिश्तेदार कहीं दिखाई नही दे रहे हैं। वह दो बार प्लेटफॉर्मका चक्कर काट आया। शायद वे सम्बन्धी महोदय बससे नागपुर रवाना हो गये। और अब चमड़ेका बैग सँभाले हुए यह लड़का सर्दीमें ठिठुरता हुआ यहाँ बैठा है। वह भी मेरी साढ़े बारह बजेवाली गाडीसे बालाघाट पहुँच जायेगा। यह गाड़ी वहाँ रातके डेढ़ बजे पहुँचती है।

कड़ाकेका जाड़ा और रातके डेढ़। मैंने कल्पना की कि इसकी माँ फूहड़ है, या वह उसकी सौतेली माँ है। आखिर, उसने क्या सोचकर अपने लड़केको इस भयानक सर्दीमें, बिना किसी खास इन्तज़ामके एक ज़िम्मेदारी देकर, रवाना कर दिया।

मैंने फिर लड़केकी तरफ़ देखा। वह मारे सर्दीके बुरी तरह ठिठुर रहा था। और मैं अपने अलवान और कम्बलका गरम सुख प्राप्त करते हुए आनन्द अनुभव कर रहा था।

मैं बिस्तरसे उठ पडा। ट्रंक खोला। उसमें-से डबलरोटीके दो टुकड़े

जिन्दगी की कोख में जन्मा
नया इस्पात
दिल के ख़ून में रँग कर!
तुम्हारे शब्द मेरे शब्द
मानव-देह धारण कर
अरे चक्कर लगा घर-घर, सभी से कह रहे हैं
'''सामना करना मुसीवत का,
बहुत तन कर
खुद को हाथ में रख कर।
उपेक्षित काल—पीड़ित सत्य-गो के यूथ
उदासी से भरे गम्भीर,
मटमैले गऊ चेहरे।
उन्हीं को देखकर जीना
कि करुणा करनी की माँ है।
बाक़ी सब कुहासा है, धुँआ-सा है।'

लेकिन, यह थोड़े ही है कि लड़का मेरी बात मान ही जायेगा। मनुष्यमें कैसे परिवर्तन होते हैं। सम्भव है, वह थानेदार बन जाये और डण्डे चलाये। कौन जानता है।

मैं अपनी ही कविताका मजा लेता हुआ और भीतर झूमता हुआ वापस लौटता हूँ। उस वक़्त सर्दी मुझे कम महसूस होने लगती है। विस्तरके पास जाकर खड़ा हो जाता हूँ। और गुलाबी अलवान और नरम कम्बलके नीचे सोये हुए उस बालककी शान्त निद्रित मुद्राको मग्न अवस्थामें देखने लगता हूँ। और मेरे हृदयमें प्रसन्न ज्योति जलने लगती है।

कि इसी बीच मुझे बैठ जानेकी तबीयत होती है। पासवाली सीमेण्टकी बेंचपर ज़रा टिक जाता हूँ। और बायीं ओर रेलवे अहातेके

मेरे बदनपर ओवरकोट था, लेकिन, अब वह कोई गरमी नहीं दे रहा था।

मैं फिरसे टी-स्टॉलपर गया। फिर एक कॅप चाय पी। और, मनुष्यके भाग्यके बारेमें सोचने लगा। मान लीजिए, इस लड़केके पिताने दूसरी शादी कर ली है। इस लड़केकी माँ मर गयी है, और जो है, वह सौतेली है। अगर अभीसे वह लड़केकी इतनी उपेक्षा करती है तो हो चुकी अच्छी तालीम। क्या पता, इस लड़केका भाग्य क्या हो।

लड़केने मेरी दी हुई हर चीज लपककर ली थी। मुझपर खूब गहरा विश्वास कर लिया था। क्या यह इसका सबूत नहीं है कि लड़केके दिलमें कहीं कोई जगह है जो कुछ माँगती है, कुछ चाहती है। ईश्वर करे, उसका भविष्य अच्छा बने।

इन्हीं खयालोंमें डूबता-उतराता मैं अपने बच्चोंको देखने लगा जो घरमें दरवाज़े बन्द करके भी तेज़ सर्दी महसूस कर रहे होंगे। उनके पास रजाई भी नहीं है। तरह-तरहके कपड़े ओढ़-जाड़कर जाड़ा निकालते हैं। इस समय, घर सूना होगा और वे मेरी याद करते बैठे होंगे। बच्चे। बच्चे। और उनकी वह माँ, जो सिर्फ भात खाकर, मोटी हुई जा रही है, लेकिन चेहरापर पीलापन है।

मैंने बच्चोंको सिखा दिया है कि बेटे कभी इच्छामय दृष्टिसे दुनिया-को मत देखना। वह मामूलीसे मामूली इच्छा भी पूरी नहीं कर सकती। और चाहे जो करो, मौका पड़नेपर झूठ बोल सकते हो, लेकिन यह मत *भूलना कि तुम्हारे गरीब माँ-बाप थे। तुम्हारी जन्मभूमि ज़मीन और* धूल और पत्थरसे बनी यह भारतकी धरती ही नहीं है। वह है—ग़रीबी। तुम कटे-पिटे दाग़दार चेहरेवालोंकी सन्तान हो। उनसे द्रोह मत करो। अपने इन लोगोंको मत त्यागना। प्रगतिवाद तो मैंने अपने घरसे शुरू कर दिया था। मेरे बड़े बच्चेको यह कविता रटा दी थी—

फिर मैं अपने सामानकी तरफ रवाना होता हूँ।

सीमेण्टकी ठण्डी बेंचके किनारेपर घुटनोंमें मुँह ढाँपे हुए उस बालक-की आकृति मुझे दूर ही से दिखाई देती है। क्या वह सर्दीमें ठिठुरकर मर तो नही गया।

लेकिन पास पहुँचकर भी मैं उसे हिलाता-डुलाता नही, उसे जगानेकी कोशिश नही करता, न उसके चारों ओर, चुपचाप, अलवान डालनेकी कोशिश करता। सोचता हूँ, करना चाहिए, लेकिन नही करता।

आश्चर्य है कि मैं भीतरसे इतना जड क्यों हो गया हूँ, कौन-सी वह भीतरी पकड़ है जो मुझे वैसा करनेसे रोकती है।

मैं टिकिट खरीदने गये टेरीलीनवाले लड़केकी राह देखता हूँ। वह अबतक क्यों नही आया?

कि एकाएक यह खयाल पूरे ज़ोरके साथ कौंध उठता है—अगर मैं ठण्डमें सिकुडते इस लडकेको बिस्तर दूँ तो मेरी (दूसरोंकी ली हुई ही क्यों न सही) यह कीमती अलवान और यह नरम कम्बल, और यह दूधिया चादर खराब हो जायेगी। मैली हो जायेगी। क्योंकि जैसा कि साफ़ दिखाई देता है यह लडका अच्छे खासे साफ़-सुथरे बढ़िया कपड़े पहने हुए थोड़े है। मुद्दा यह है। हाँ मुद्दा यह है कि वह दूसरे और निचले किस्मके, निचले तबक़ेके लोगोंकी पैदावार है।

मैं अपने भीतर ही नंगा हो जाता हूँ। और अपने नंगेपनको ढाँपने-की कोशिश भी नही करता।

उस वक्त घडी ठीक बारह बजा रही थी और गाड़ी आनेमें अभी आधे घण्टेकी देर थी।

हूँ और, फिर प्लेटफ़ॉर्मकी सूनी बत्तियोंको देखने लगता हूँ। मेरा मन एकाएक स्तब्ध हो जाता है।

मेरे बिस्तरपर सोनेवाला बालक ठीक समयपर अपने-आप ही जाग उठा। तुरन्त मोज़े पहने, चमड़ेका क़ीमती जूता पहना, बन्द बाँधे। अपने टेरीलीनके बुश्शर्टको ठीक किया। नेकरकी जेबमें-से कंघी निकालकर बालोंको सँवारा।

और बिस्तरसे बाहर आकर खड़ा हो गया, चुस्त और मुस्तैद। और फिर अपनी उसी कमज़ोर पतली आवाज़में कहा, 'टिकिट-घर खुल गया होगा।'

मैंने पूछा, 'टिकिटके लिए पैसे हैं, या दूँ?'

'नहीं, नहीं, वह सब मेरे पास हैं।' यह उसने इस तरह कहा जैसे वह अपनी देखभाल अच्छी तरह कर सकता हो।

वह चला गया। मुझे लगा कि टेरीलीनके बुश्शर्टवाले इस बालकको दूसरोंकी सहायताका अच्छा अनुभव है। और वह स्वयं एक सीमा तक छल और निश्छलताका विवेक कर सकता है।

मेरा बिस्तर खाली हो गया और अब मैं चाहूँ तो बेंचके दूसरे छोरपर घुटनोंमें मुँह ढाँपे इस दूसरे बालकको आरामकी सुविधा दे सकता हूँ।

और मैं अपने मनके निःसंग अन्धकारमें कहता जाता हूँ, 'उठो, उठो, उस बालकको बिस्तर दो।'

लेकिन मैं जड़ हो गया हूँ। और, मेरे अँधेरेके भीतर एक नाराज़ और सख़्त आवाज़ सुनाई देती है, 'मेरा बिस्तर क्या इसलिए है कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति बने। शीः। ऐसे न मालूम कितने ही बालक हैं जो सड़कोंपर घूमते रहते हैं।'

मैं बेंचके किनारेपर-से उठ पड़ता हूँ और टी-स्टॉलपर जाकर एक कॅप चाय और पीता हूँ। सर्दी मेरे बदनमें कुछ कम होती है। और

लेते हैं। ऊँचे उठनेका सुख अनुभव कर बच्ची मुसकरा उठती है।

पिता बच्चीको लिये घरमें प्रवेश करते है तो एक ठण्डा सूना, मटियाली बास-भरा अँधेरा प्रस्तुत होता है, पिछवाड़ेके अन्तिम छोरमें आसमानकी नीलाईका एक छोटा चौकोर टुकडा खडा हुआ है! वह दरवाजा है।

घरमे कोई नही है।

सिर्फ दो साँसें है,

एक पिताकी।

दूसरी पुत्रीकी।

वे एक अँधेरे कोनेमे बैठ जाते है और उनके घुटनोंमें वह बालिका है। उसका चेहरा पिताको दिखाई नही देता। फिर भी, वह पूरा-का-पूरा महसूस होता है। वे चुपचाप उसके गालपर हाथ फेरते हैं। हाथ फेरते जाते हैं और सोचते हैं कि वह लडकी मेरे समान ही धैर्यवान है, सब कुछ समझती है, सब कुछ पहचानती है। बडी प्यारी लड़की है। उन्हे लगता है कि उनकी आँखें तर हो रही है।

एकाएक खयाल आता है कि अगर घरमे बडा आईना होता तो अच्छा होता; अपनी बडी आँसू-भरी सूरतकी बदसूरती देख लेते। उन्हें उमर रसीदा आदमियोंका रोना अच्छा नही लगता।

सामने, अँधेरेमे, रंग-बिरंगी पर धुँधली आकृतियाँ तैर जाती हैं। सुन्दर चेहरेवाली एक लडकी है, वह उनकी सरोज है! नारंगी साडी है, सुनहली किनारी है सफेद ब्लाउज है! गलेमें हार है। हाथोमें रंग-बिरंगी चूडियाँ है--एक-एक दर्जन! पतिके घरसे वापस लौटी है। खुश है, दामाद मैकेनिकल इंजीनियर है जिसकी गरीब सूरत है। और वह बाहर बरामदेमें कुरसीपर बैठा है; क्या करे सूझता नही!

घरमें उनकी स्त्री पूड़ी बना रही है। पकौडियाँ बन रही हैं। बहुत-बहुत-सी चीजें है। भाग-दौड है। हल्ला-गुल्ला है। शोर-शराबा है।

काठका सपना

थके हुए कन्धे आगे बढ़ रहे हैं, जिसपर पीली मिट्टीका-सा चौड़ा चेहरा। उसपर काले कोयलेके-से दाग़। कोई धूरा जलाती हुई, बू-भरी, धुँआती मैली आग जो मनमें है और कभी-कभी सुनहली आँच भी देती है। पूरा शनिश्चरी रूप।

वे एक बालिकाके पिता हैं, और वह बालिका एक घरके बरामदे-की गलीमें निकली मुँडेरपर बैठी है, अपने पिताको देखती हुई। उन्हें देख उसके दुबले पीले चेहरेपर मुसकराहट खिलती है। और वह अपने दोनों हाथ आगे कर देती है जिससे कि उसके काका उसे अपने कन्धोंपर ले लें।

उसके पिता अपनी बालिकाको देख प्रसन्न नहीं होते हैं। विक्षुब्ध हो जाता है उनका मन। नन्हीं बालिका सरोजका पीला उतरा चेहरा, तनमें फटा हुआ सिर्फ़ एक 'फ्रॉक' और उसके दुबले हाथ उन्हें बालिका-के प्रति अपने कर्त्तव्यकी याद दिलाते हैं; ऐसे कर्त्तव्यकी जिसे वे पूरा नहीं कर सके, कर भी नहीं सकेंगे, नहीं कर सकते थे। अपनी अक्षमताके बोधसे ये चिढ़ जाते हैं। और वे उस नन्हीं बालिकाको डाँटकर पूछते हैं, 'यहाँ क्यों बैठी है? अन्दर क्यों नहीं जाती।'

बालिका सरोज, गम्भीर, वृद्ध दार्शनिक-सी बैठी रहती है। अपने क्रोधपर पिताको लज्जा आती है। उनका मन गलने लगता है। उनके हृदयमें बच्चीके प्रति प्यार उमड़ता है। वे उसे अपने कन्धेपर ले

उसे वह तोडती है। ऊँची मुँडेरपर चढ़कर नीमकी सूखी डाल तोड लानेका जो साहस है, उस साहससे दीप्त होकर वह प्रफुल्ल हो जाती है। सारी लकड़ी ठण्डे चूल्हेके पास लाती है, जमा कर देती है।

सरोज पिताकी गोदसे उठ आयी है। वह देखती है कि चूल्हेमे सुनहली ज्वाला निकल रही है! वह देखती है, और देखती रह जाती है। उसे उस ज्वालाका रंग अच्छा लगता है। वह चूल्हेके पास जाकर बैठ गयी है। उसकी रीढकी हड्डी दुख रही है, पर चूल्हेमे जलती हुई ज्वाला उसे अच्छी लग रही है।

सारा चौका सुहाना हो उठता है—भूरा-मटियाला, साफ-सुथरा! भीतकी पटियापर रखी पीतलकी एक भगोनी, छोटे-छोटे दो गिलास और दो कटोरियाँ, कैसी चमचमा रही हैं, कितनी सुन्दर! उनपर माँका हाथ फिरा है। तभी तो" "तभी तो""।

सुबहके पकाये भातमे पानी डाला जाता है और नमक! चूल्हेपर चढ गया है भात! सुबहका बेसन भी है। उसमे पानी मिला दिया जाता है। उसे भी चूल्हेके दूसरे मुँहपर रख दिया गया है, सीझता रहेगा!

सरोज बोलती नही, माँ बोलती नही, पिता बोलते नही!

जब वह नन्ही बालिका भोजन कर चुकी तो उसकी जानमे जान आयी। बोरेपर बिछे, माँके चिथड़ेसे बने, अपने मुलायम बिस्तरपर वह सो गयी। पिताजीके बिस्तरमे सटा हुआ उसका बिस्तर है! वे उसे अपने पास नही लेते। रातको वह बिस्तर गीला करती है, इसीलिए!

दोनों तथाकथित बिस्तरोंपर लेट गये हैं! दोनोंको नीद नही! दोनों एक दूसरेसे कुछ कहना चाहते हैं, कहना आवश्यक है। किन्तु वे जानते हैं कि दोनोंको मालूम है कि उन्हे एक-दूसरेसे क्या कहना है!

लोग आ-आकर बैठ रहे हैं—आ रहे हैं, जा रहे हैं। पास-पड़ोसकी लुगाइयाँ चौकेमें मदद कर रही हैं। और उनके दिलमें'''क्या करें, क्या न करें, सब कुछ कर डालें! क्या ही अच्छा होता कि उनमें यह ताक़त होती कि वे सबको प्रसन्न कर सकते और सारी दुनियाको ख़ुश देख सकते।''''कि इतनेमें सपना टूट जाता है।

बरामदेका दरवाज़ा बज उठता है। पैरोंकी आवाज़से साफ़ ज़ाहिर है कि स्त्री, जो कहीं गयी थी, लौट आयी है।

अन्दर आकर देखती है। उसे अचम्भा होता है। 'यहाँ क्या कर रहे हो?'

उसकी आवाज़ गूँजती है। जैसे लोहेकी साँकल बजती है। जैसे ईमान बजता है!

'सरोज कहाँ है?'

कोई आवाज़ नहीं! सरोज और उसके पिता स्तब्ध बैठे हैं।

पिता बोलते हैं मानो छातीके कफ़को चीरती हुई घरघराती आवाज़ आ रही हो। कहते हैं, 'कहाँ गयी थी? घर बड़ा सूना लग रहा था।'

स्त्री कोई जवाब नहीं देकर वहाँसे चली जाती है। आँगनमें पहुँच-कर, ज़मीनमें गड़ा हुआ एक पुराना पेड़ जो कट चुका है और जिस-की झिल्लियाँ बिखरी हैं, उसपर पैर रखकर खड़ी होती है। ज़मीनमें उस कटे पेड़में-से ज़मीनकी तहें छूते हुए, नये अंकुर निकले हैं। बादमें, उनपर-से उतरकर, वह झिल्लियाँ बीनती है। पड़ोससे लायी हुई कुल्हाड़ी चलाकर, उन अधकटे ठूँठोंसे लकड़ी निकालनेका ख़याल आता है। लेकिन काटनेका जी नहीं होता। इसलिए झिल्लियाँ बीन-कर, वह उनका एक ढेर बना देती है और फिर आँगनकी दीवालकी मुंडेरपर चढ़ जाती है, क्योंकि उस मुंडेरके एक ओर नीमकी एक सूखी डाल निकल आयी है।

. वहाँ भी हलचल है। वहाँ भी बेचैनी है। लेकिन कैसी ?

""लेकिन इन दोनोंमें न स्वीकार है न अस्वीकार ! सिर्फ एक सन्देह है, यह सन्देह साधार है कि इस निष्क्रियतामें एक अलगाव है—एक भीतरी अलगाव है। अलगावमें विरोध है, विरोधमें आलोचना है, आलोचनामें करुणा है। आलोचना पूर्णतः स्वीकरणीय है, जिसे इस पुरुषने कभी पूरा नहीं किया। वह पूरा नहीं कर सकता।

कर्त्तव्य कर्मको पूरा करना केवल उसके संकल्प-द्वारा ही नहीं हो सकता। उसके लिए और भी कुछ चाहिए ! फिर भी, वह पुरुष मन-ही-मन यह वचन देता है, यह प्रतिज्ञा करता है कि कल जरूर वह कुछ-न-कुछ करेगा; विजयी होकर लौटेगा।

पुरुषमें भी आवेश नहीं है। वह भी ठण्डा है, सिर्फ गरमी लानेकी कोशिश कर रहा है।

वह उसकी बाँहोंमें थी। निश्चेष्ट शरीर ! फिर भी, उसमें एक ऊष्मा है, जो मानो सौ नेत्रोंमें अपने पुरुषको देख रही हो, निर्णय प्रदान करनेके लिए प्रमाण एकत्र कर रही हो। फिर भी निश्चेष्ट और सक्रिय !

पुरुष संवेदनाओंके जालमें खो गया। उसे स्त्रीके होंठ गुलाबकी सूखी पंखुरियों-से लगे, जिसमें उसे सूरजकी गरमीकी याद आयी। उसके कपोल मिट्टी-से थे—भुसभुसी, नमकीन, शुष्क मृत्तिका ! उसका हृदय एक अनजानी गूढ़ करुणाकी सूचनासे भर उठा। ' हाँ, उसका पेट, उसकी त्वचामें तो घरेलू घाम थी। उसने उसे अपनी बाँहोंमें भर लिया और वह, मन-ही-मन, उस पूरी गरम चिलकती हुई पृथ्वीको याद करने लगा जिसपर वह बेसहारा मारा-मारा फिरता है। क्या यह पृथ्वी उतनी ही दुःखी रही है जितना कि वह स्वयं है !

एक ऊर्जा उठी और गिर गयी। पुरुष निश्चेष्ट पड़ा रहा। पर मन जाग्रत था।

""दोनों स्त्री-पुरुषके जीवनपर विरामका पूर्ण चिह्न लग गया

उस पूर्व-ज्ञानको वे कहना-सुनना नहीं चाहते। वह पूर्व-ज्ञान वेदना-कारक है, इसलिए, उसे न कहना ही अच्छा ! फिर भी, न कहनेसे काम नहीं बनता, क्योंकि कह-सुन लेनेसे अपने-अपने निवेदनोंपर सील लग जाती है, व्यक्तिगत मुहर लग जाती है। वह व्यक्तिगत मुहर अभी लगी नहीं है। हर एक उत्तर हर एक ज्ञान है। फिर भी, बहुत कुछ अज्ञात छूट जाता है !

वे नहीं चाहते थे कि रातमें नींदके पहलेके ये कुछ क्षण खराब हो जायें, मनःस्थिति विकृत हो, और दुर्दमनीय चिन्तासे ग्रस्त होकर वे रात-भर जागते-कराहते रहें। नहीं, ऐसा नहीं ! चिन्ता सुबह उठकर करेंगे। रात है। यह रात अपनी है। कलकी कल देखी जायेगी !

किन्तु इन खयालोंसे माथेका दुखना नहीं थमता, देहकी थकन दूर नहीं होती, असन्तोषकी आग और बेबसीका धुँआ दूर नहीं होता।

नहीं, उसका एक उपाय है ! जबरदस्ती नींद लानेके लिए आप एकसे सौ तक गिनते जाइए ! इस तरह, जब आप कई बार गिनेंगे, दिमाग़ थक जायेगा और आप ही आप भीतर अँधेरा छा जायेगा। एक दूसरा तरीक़ा है ! रेखागणितकी एक समस्या ले लीजिए। मन-ही-मन चित्र तैयार कीजिए। उसके कोणोंको नाम दीजिए और आगे बढ़ते जाइए। अन्त तक आनेके पहले ही, नींद घेर लेगी। एक और भी मार्ग है, जिसे इस लेखका लेखक अकसर अपनाया करता है ! मस्तिष्क-की सारी नसें ढीली कर दीजिए। आँखें मूँदकर पलकें बिलकुल बन्द-करके सिर्फ़ अँधेरेको एकाग्र देखते रहिए। तरह-तरहकी तसवीरें बनेंगी। पेड़दार रस्ते और उसपर चलती हुई भीड़ अथवा पहाड़ और नदियाँ जिनको पार करती हुई रेलगाड़ी''''भक-भक-भक।

अँधेरा जड़ हो गया और छातीपर बैठ गया। नहीं, उसे हटाना पड़ेगा ही—सरोजके पिता सोच रहे है ! और उनकी आँखें, बग़लमें पड़े हुए बिस्तरकी ओर गयीं।

ब्रह्मराक्षसका शिष्य

उस महाभव्य भवनकी आठवी मंजिलके ज़ीनेसे सातवी मंजिलके ज़ीनेकी सूनी-सूनी सीढियोपर नीचे उतरते हुए, उस विद्यार्थीका चेहरा भीतरसे किसी प्रकाशसे लाल हो रहा था।

वह चमत्कार उसे प्रभावित नहीं कर रहा था, जो उसने हाल-हालमे देखा। तीन कमरे पार करता हुआ वह विशाल वज्रबाहु हाथ उसकी आँखोके सामने फिरसे खिंच जाता। उस हाथकी पवित्रता ही उसके खयालमें जाती किन्तु वह चमत्कार, चमत्कारके रूपमे उसे प्रभावित नही करता था। उस चमत्कारके पीछे ऐसा कुछ है, जिसमे वह घुल रहा है, लगातार घुलता जा रहा है। वह 'कुछ' क्या एक महा-पण्डितकी ज़िन्दगीका सत्य नही है ? नही, वही है ! वही है !

पाँचवीं मंजिलसे चौथी मंजिलपर उतरते हुए, ब्रह्मचारी विद्यार्थी, उस प्राचीन भव्य भवनकी सूनी-सूनी सीढ़ियोंपर यह श्लोक गाने लगता है।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः-
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयो प्रत्यध्वकुंजद्रुमं,
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलय।

इस भवनसे ठीक बारह वर्षके बाद यह विद्यार्थी बाहर निकला है। उसके गुरुने जाते समय, राधा-माधवकी यमुना-कूल-क्रीड़ामे घर भूली

है, काठ हो गये हैं। बाढ़ आती है। किनारेपर पड़े हुए काठोंको बहाकर ले जाती है। जल-विप्लव है। काठ बहते जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ, आपसमें गुंथे हुए बहे जा रहे हैं।

बादल-तूफ़ानके कारण, पेड़ तिरछे हो रहे हैं। पर वे गुंथे-बँधे बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं""और, हाँ, गुँथे-बँधे काठ खाली नहीं हैं। उनपर एक बालिका बैठी हुई है। हाँ, वह सरोज है। अपने नन्हें दो हाथ उसने दोनों काठोंपर टेक दिये हैं, जिनके सहारे वह स्वयं चली जा रही है।

सरोजकी उस बाल मूर्तिकी रक्षा करनी ही होगी! उन दो निष्प्राण काठ-लट्ठोंका यही कर्त्तव्य है।

पुरुष इस स्वप्नको देखता ही रहता है। बारहका गजर होता है। रात और आगे बढ़ती है। सप्तर्षि जो अबतक एक कोनेमें थे, सामने आकर साफ़ दिखाई देते हैं।

पूछा, तो वह चौखला उठा। इस काशीमें कैसे-कैसे दम्भी इकट्ठे हुए हैं ?

वार्तालाप सुनकर वह लेटा हुआ लड़का झटसे उठ बैठा। उसका चेहरा धूल और पसीनेसे म्लान और मलिन हो गया था, भूख और प्याससे निर्जीव।

वह एकदम, बात करनेवालोंके पास खड़ा हुआ। हाथ जोड़े, माथा जमीनपर टेका। चेहरेपर आश्चर्य और प्रार्थनाके दयनीय भाव ! कहने लगा, 'हे विद्वानो ! मैं मूर्ख हूँ। अपढ़ देहाती हूँ किन्तु ज्ञान-प्राप्तिकी महत्त्वाकांक्षा रखता हूँ। हे महाभागो ! आप विद्यार्थी प्रतीत होते हैं। मुझे विद्वान् गुरुके घरकी राह बताओ।'

पेड़-तले बैठे हुए दो बटुक विद्यार्थी उस देहातीको देखकर हँसने लगे; पूछा—

'कहाँसे आया है ?'

'दक्षिणके एक देहातसे !""पढने-लिखनेसे मैंने बैर किया तो विद्वान् पिताजीने घरसे निकाल दिया। तब मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि काशी जाकर विद्याध्ययन करूँगा। जंगल-जंगल घूमता, राह पूछता, मैं आज ही काशी पहुँचा हूँ। कृपा करके गुरुका दर्शन कराइए।'

अब दोनों विद्यार्थी जोर-जोरसे हँसने लगे। उनमें-से एक, जो विदूषक था, कहने लगा—

'देख बे, सामने सिंहद्वार है। उसमें घुस जा, तुझे गुरु मिल जायेगा।' कहकर वह ठठाकर हँस पड़ा।

आशा न थी कि गुरु बिलकुल सामने ही हैं। देहाती लड़केने अपना डेरा-डण्डा सँभाला और बिना प्रणाम किये तेज़ीसे कदम बढ़ाता हुआ भवनमें दाखिल हो गया।

दूसरे बटुकने पहलेसे पूछा, 'तुमने अच्छा किया उसे वहाँ भेजकर ?' उसके हृदयमें खेद था और पापकी भावना।

हुई राधाको बुला रहे नन्दके भाव प्रकट किये हैं। गुरुने एक साथ शृंगार और वात्सल्यका बोध विद्यार्थीको करवाया। विद्याध्ययनके बाद, अब उसे पिताके चरण छूना है। पिताजी ! पिताजी ! माँ ! माँ ! यह ध्वनि उसके हृदयसे फूट निकली।

किन्तु ज्यों-ज्यों वह छन्द सूने भवनमें गूँजता, घूमता गया त्यों-त्यों विद्यार्थीके हृदयमें अपने गुरुकी तसवीर और भी तीव्रतासे चमकने लगी।

भाग्यवान् है वह जिसे ऐसा गुरु मिले !

जब वह चिड़ियोंके घोंसलों और बर्रोंके छत्तों-भरे सूने ऊँचे सिंह-द्वारके बाहर निकला तो एकाएक राहसे गुजरते हुए लोग 'भूत' 'भूत' कहकर भाग खड़े हुए। आज तक उस भवनमें कोई नहीं गया था। लोगोंकी धारणा थी कि वहाँ एक ब्रह्मराक्षस रहता है।

बारह साल और कुछ दिन पहले—

सड़कपर दोपहरके दो बजे, एक देहाती लड़का, भूखा-प्यासा अपने सूखे होठोंपर जीभ फेरता हुआ, उसी बग़लवाले ऊँचे सेमलके वृक्षके नीचे बैठा हुआ था। हवाके झोकोंसे, फूलोंके फलोंका रेशमी कपास हवामें तैरता हुआ, दूर-दूर तक और इधर-उधर बिखर रहा था। उसके माथेपर फ़िक्रें गुँथ-बिँध रही थीं। उसने पासमें पड़ी हुई एक मोटी ईंट सिरहाने रखी और पेड़-तले लेट गया।

धीरे-धीरे, उसकी विचार-मग्नताको तोड़ते हुए कानके पास उसे कुछ फुसफुसाहट सुनाई दी। उसने ध्यानसे सुननेकी कोशिश की। वे कौन थे ?

उनमें-से एक कह रहा था, 'अरे, वह भट्ट। नितान्त मूर्ख है और दम्भी भी। मैंने जब उसे ईशावास्योपनिषद्‌की कुछ पंक्तियोंका अर्थ

निश्छल ज्योति !

अपने चेहरेपर गुरुकी गड़ी हुई दृष्टिसे किंचित् विचलित होकर शिष्यने अपनी निरक्षर बुद्धिवाला मस्तक और नीचा कर लिया।

गुरुका हृदय पिघला ! उन्होंने दिल दहलानेवाली आवाज़से, जो काफ़ी धीमी थी, कहा, 'देख ! बारह वर्षके भीतर तू वेद, संगीत, शास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, साहित्य, गणित आदि-आदि समस्त शास्त्र और कलाओंमें पारंगत हो जावेगा। केवल भवन त्यागकर तुझे बाहर जानेकी अनुज्ञा नहीं मिलेगी। ला, वह आसन। वहाँ बैठ।'

और इस प्रकार गुरुने पूजा-पाठके स्थानके समीप एक कुशासनपर अपने शिष्यको बैठा, परम्पराके अनुसार पहले शब्दरूपावलीसे उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ कराया।

गुरुने मृदुतासे कहा,—'बोलो बेटे—

रामः, रामौ, रामाः—प्रथमा

रामम्, रामौ, रामान्—द्वितीया'

और इस बाल-विद्यार्थीकी अस्फुट हृदयकी वाणी उस भयानक निःसंग, शून्य, निर्जन, वीरान भवनमें गूँज-गूँज उठती। सारा भवन गाने लगा—

'रामः रामौ रामाः—प्रथमा !'

धीरे-धीरे उसका अध्ययन 'सिद्धान्तकौमुदी' तक आया और फिर अनेक विद्याओंको आत्मसात् कर, वर्ष एकके-बाद-एक बीतने लगे। नियमित आहार-विहार और संयमके फलस्वरूप विद्यार्थीकी देह पुष्ट हो गयी और आँखोंमें नवीन तारुण्यकी चमक प्रस्फुटित हो उठी। लड़का, जो देहाती था, अब गुरुसे संस्कृतमें वार्तालाप भी करने लगा।

केवल एक ही बात वह आज तक नहीं जान सका। उसने कभी जाननेका प्रयत्न नहीं किया। वह यह कि इस भव्य-भवनमें गुरुके समीप इस छोटी-सी दुनियामें यदि और कोई व्यक्ति नहीं है तो सारा मामला

धोया। गुरुकी पूजाकी थाली सजायी और आज्ञाकारी शिष्यकी भाँति आदेशकी प्रतीक्षा करने लगा। उसके शरीरमें अब एक नयी चेतना आ गयी थी। नेत्र प्रकाशमान थे।

विशालबाहु पृथु-वक्ष तेजस्वी ललाटवाले अपने गुरुकी चर्या देखकर लड़का भावुक-रूपसे मुग्ध हो गया था। वह छोटे-से-छोटा होना चाहता था कि जिससे लालची चींटीकी भाँति जमीनपर पड़ा, मिट्टीमें मिला, ज्ञानकी शक्करका एक-एक कण साफ देख सके और तुरन्त पकड़ सके!

गुरुने भयपूर्ण दृष्टिसे देख, उसे डपटकर पूछा; 'सोच-विचार लिया?'

'जी!' की डरी हुई आवाज!

कुछ सोचकर गुरुने कहा, 'नहीं, तुझे निश्चय करनेकी आदत नहीं है। एक बार पढ़ाई शुरू करनेपर तुम बारह वर्ष तक फिर यहाँसे निकल नहीं सकते। सोच-विचार लो। अच्छा, मेरे साथ एक बजे भोजन करना, अलग नहीं!'

और गुरु व्याघ्रासनपर बैठकर पूजा-अर्चामें लीन हो गये। इस प्रकार दो दिन और बीत गये। लड़केने अपना एक कार्यक्रम बना लिया था, जिसके अनुसार वह काम करता रहा। उसे प्रतीत हुआ कि गुरु उससे सन्तुष्ट हैं।

एक दिन गुरुने पूछा, 'तुमने तय कर लिया है कि बारह वर्ष तक तुम इस भवनके बाहर पग नहीं रखोगे?'

नतमस्तक होकर लड़केने कहा, 'जी!'

गुरुको थोड़ी हँसी आयी, शायद उसकी मूर्खतापर या अपनी मूर्खतापर, कहा नहीं जा सकता। उन्हें लगा कि क्या इस निरे निरक्षरके आँखें नहीं हैं? क्या यहाँका वातावरण सचमुच अच्छा मालूम होता है? उन्होंने अपने शिष्यके मुखका ध्यानसे अवलोकन किया। एक सीधा, भोला-भाला निरक्षर बालमुख! चेहरेपर निष्कपट

हूँ किन्तु फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। अपने मानव जीवनमें मैंने विश्वकी समस्त विद्याको मथ डाला किन्तु दुर्भाग्यसे कोई योग्य शिष्य न मिल पाया कि जिसे मैं समस्त ज्ञान दे पाता। इसीलिए मेरी आत्मा इस संसारमें अटकी रह गयी और मैं ब्रह्मराक्षसके रूपमें यहाँ विराजमान रहा।'

'तुम आये, मैंने तुम्हें बार-बार कहा लौट जाओ! कदाचित् तुममें ज्ञानके लिए आवश्यक श्रम और संयम न हों किन्तु मैंने तुम्हारी जीवन-गाथा सुनी। विद्यासे वैर रखनेके कारण, पिता-द्वारा अनेक ताड़नाओंके बावजूद तुम गँवार रहे और बादमें माता-पिता-द्वारा निकाल दिये जानेपर तुम्हारे व्यथित अहंकारने तुम्हें ज्ञान-लोकका पथ खोज निकालनेकी ओर प्रवृत्त किया। मैं प्रवृत्तिवादी हूँ, साधु नहीं। सैकड़ों मील जंगलकी बाधाएँ पार कर तुम काशी आये। तुम्हारे चेहरेपर जिज्ञासाका आलोक था। मैंने अज्ञानसे तुम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्माको मुक्ति दिला दी। ज्ञानका पाया हुआ उत्तरदायित्व मैंने पूरा किया। अब मेरा यह उत्तरदायित्व तुमपर आ गया है। जबतक मेरा दिया तुम किसी औरको न दोगे तबतक तुम्हारी मुक्ति नहीं।'

'शिष्य, आओ, मुझे विदा दो।'

'अपने पिताजी और माँजीको प्रणाम कहना।'

शिष्यने साश्रुमुख ज्यों ही चरणोंपर मस्तक रखा आशीर्वादका अन्तिम कर-स्पर्श पाया और ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो वहाँसे वह ब्रह्मराक्षस तिरोधान हो गया।

वह भयानक वीरान, निर्जन बरामदा सूना था। शिष्यने ब्रह्मराक्षस गुरुका व्याघ्रासन लिया और उनका सिखाया पाठ मन-ही-मन गुनगुनाते हुए आगे बढ़ गया।

■

चलता कैसे है? निश्चित समयपर दोनों गुरु-शिष्य भोजन करते। सुव्यवस्थित रूपसे उन्हें सादा किन्तु सुचारु भोजन मिलता। इस आठवीं मंजिलसे उतर सातवीं मंजिल तक उनमें-से कोई कभी नहीं गया। दोनों भोजनके समय अनेक विवादग्रस्त प्रश्नोंपर चर्चा करते। यहाँ इस आठवीं मंज़िलपर एक नयी दुनिया बस गयी।

जब गुरु उसे कोई छन्द सिखलाते और जब विद्यार्थी मन्दाक्रान्ता या शार्दूलविक्रीडित गाने लगता तो एकाएक उस भवनमें हलके-हलके मृदंग और वीणा बज उठती और वह वीरान, निर्जन शून्य भवन वह छन्द गा उठता।

एक दिन गुरुने शिष्यसे कहा, 'बेटा! आजसे तेरा अध्ययन समाप्त हो गया है। आज ही तुझे घर जाना है। आज बारहवें वर्षकी अन्तिम तिथि है। स्नान-सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर आओ और अपना अन्तिम पाठ लो।'

पाठके समय गुरु और शिष्य दोनों उदास थे। दोनों गम्भीर। उनका हृदय भर रहा था। पाठके अनन्तर यथाविधि भोजनके लिए बैठे।

दूसरे कक्षमें वे भोजनके लिए बैठे थे। गुरु और शिष्य दोनों अपनी अन्तिम बातचीतके लिए स्वयंको तैयार करते हुए कौर मुँहमें डालने ही वाले थे कि गुरुने कहा, 'बेटे, खिचड़ीमें घी नहीं डाला है?'

शिष्य उठने ही वाला था कि गुरुने कहा, 'नहीं, नहीं, उठो मत!' और उन्होंने अपना हाथ इतना बढ़ा दिया कि वह कक्ष पार जाता हुआ, अन्य कक्षमें प्रवेश कर क्षणके भीतर, घीकी चमचमाती लुटिया लेकर शिष्यकी खिचड़ीमें घी उड़ेलने लगा। शिष्य काँपकर स्तम्भित रह गया। वह गुरुके कोमल वृद्ध मुखको कठोरतासे देखने लगा कि यह कौन है? मानव है या दानव? उसने आज तक गुरुके व्यवहारमें कोई अप्राकृतिक चमत्कार नहीं देखा था। वह भयभीत, स्तम्भित रह गया। गुरुने दुःखपूर्ण कोमलतासे कहा 'शिष्य! स्पष्ट कर दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस

जीवनके घनिष्ठ क्षणोंका जो एक आत्मविश्वास होता है वह रमेशके मनमें इस समय लहरा रहा था। शरद और गोर्की, परिचितोंके स्वभाव-चित्र आदि, निष्कर्ष रूपसे, मनुष्य सुधारकी ओर जिस प्रकार इंगित करते हैं, ठीक वही बात आज रमेशके मनमें रसकी भाँति उमड़ रही थी। इस समय वह आनन्दमय था। उसको लग रहा था कि अपनी कोठरीमें बन्द वह छोटी-सी इकाई मात्र नहीं, वरन् स्वच्छन्द समीर है जो सारे संसार में व्याप सकता है।

आसमानमें तारे चमक रहे थे और सब ओर शीतलताकी गन्ध फैल रही थी। रमेश खुश था।

किन्तु उसका यह आनन्द क्षणस्थायी था। बातें करके परिस्थिति नहीं सुधरा करती। सूनेमें सपने देखनेसे जिन्दगी नहीं बना करती। गलीको पार करते ही घरकी अवरुद्ध हवाने उसके दिलको कचोट लिया। उसकी स्त्री—मानो एक बीमार छाया! उसके बच्चे—प्रूफ़ कापीमें टूटे हुए अक्षर! और वह स्वयं....

वह सोच रहा था कि घरमें प्रवेश करते ही झिड़की मिलेगी और लड़ाईका पूरा वातावरण बन जायगा।

किन्तु, सब दूर एकदम सुनसान शान्ति थी। एक ओर एक फटी चादरपर उसकी स्त्री सो रही थी। वहीं छोटे बच्चे आड़े-तिरछे सो रहे थे। कोनेमें लोहेके छोटे स्टूलपर टीन-ढिबरी जल रही थी। वहीं दरवाज़ेमें पतिके लिए साफ़ बिस्तर बिछा दिया गया था।

थका हुआ चूर रमेश अपना साफ़ बिस्तर देख ख़ुश हो गया। उसने स्नेहपूर्वक अपने बाल-बच्चोंकी तरफ़, स्त्रीकी तरफ़ देखा, चुपचाप पुस्तकें उठा लीं, चिमनी तकियेकी तरफ़ रखी और लेटे हुए पढ़ने लगा।

एक बच्चा चीख़ उठा। पत्नीकी आँख खुली। पतिने सहानुभूति, कोमलता और स्नेह उडेलकर कहा, 'तुमने खाना खा लिया'।

स्त्रीने ज़ोरदार भयानक अवरुद्ध स्वरमें उत्तर दिया, भूख लगी

नयी ज़िन्दगी

अँधेरी रातमे सड़कपर बिजलीके बल्वके नीचे दो छायाएँ दीख रही थी। एकदम निर्जन वातावरण था। तालावकी लहरे थपेड़े मारती हुई यहाँसे वहाँ तक एक दूसरेसे स्पर्धा कर रही थी। सिनेमाके दूसरे शोके लोग सड़कसे गुजर चुके थे। हवा तेजीसे चल रही थी। दोनो छायाएँ एक चौराहेपर आ गयी। तब एकने दूसरेसे कहा—

'देखो, सामने घण्टा-घडी दो बजा रही है, तुम जाओ।'

निवारीने इसका जवाब दिया, कैसा वातावरण है, यह रात, यह घण्टाघर! यह ठण्डी हवा, और तुम कह रहे हो कि जाओ।

रमेशने तिवारीको आधे रास्ते तक और पहुँचाया और यह कहानी सुना दी कि किस तरह रमेश कानपर जनेऊ लपेटे हाथमे लोटा लिये घण्टो बात कर सकता है और फिर यह परवाह नहीं कि आफिस भी जाना है। रमेशने कहा इस सम्बन्धमे मै बहुत बदनामशुदा हूँ, लेकिन समझदार होना चाहता हूँ। इसलिए अब तुम खिसक जाओ और मुझे भी जाने दो।

'लेकिन यार, बातें तुम्हारी कितनी नफीस होती है। तुम्हे छोड़ जानेको जी तो नहीं चाहता लेकिन जा रहा हूँ।'

जब तिवारी रवाना हो गया तो रमेश बहुत देर तक उसको देखता रहा। और मनमे बुदबुदाया, 'कितना भला आदमी है। लेकिन.... काश मैं लिख सकता तो उपन्यासमे चरित्र खड़ा कर देता।'

गया था। साथ ही, मज़ा यह है कि, उसे अपनी कर्तृत्व-शक्ति और प्रभावके स्वरूपकी ज्यादा जानकारी थी। लोग, अनेक अवसरोंपर, उसका मुँह जोहते; पर रमेश था कि अपनेको निकम्मा समझकर भयानक हीन-भावसे शिथिल हो जाता।

किन्तु, इसके ठीक विपरीत, रमेशमें अपने मुहल्लेकी मिट्टी बोलती थी। अगर देश-भक्तिके मानी जनताकी जिन्दगीसे दिली ताल्लुक़ात होते हैं तो रमेशमें सचमुच देशके प्रति प्रेम था। वह हमेशा यह सोचा करता कि हमारा उद्धार कैसे हो। नीमके पेड़के नीचे, टोकरीमें गोबर भरती हुई लड़कियाँ, छोटे-से टीलेपर खड़ी हुई ध्यानमग्न बकरी, खोमचा बेच-कर घरपर लौटा हुआ अधेड़ रामकिसन, मॉडेल मिलसे हाथमें टिफिनका खाली डिब्बा लेकर चलनेवाले नीचे मज़दूरोंका जत्था, विशाल बरगद-का पेड़ और उसके नीचे रँभाती हुई गायें उसकी कविताके प्रतीक हो सकते थे। वाणीका वह धनी था। उसकी सशक्त गद्य-वाणीमें-से ज़िन्दगीके अनुभव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके दृश्य, स्थानीय और प्रान्तीय हलचलोंके नज़ारे कविताकी भाँति फूट पड़ते।

एक दिन वह मेरे पास अत्यन्त उदास होकर बैठ गया और कहने लगा, 'मुझे एक ऐसा गुरु चाहिए जो छड़ी मारे! वह मुझ पत्थरमें-से एक सच्चा मनुष्य पैदा कर सकता है।'

मैं उसकी आत्महननमयी आलोचनासे विक्षुब्ध हो गया। जवाब दिया, 'तुम एक लीडर हो, विचारक समझे जाते हो। फिर ऐसी बात क्यों?'

मैंने उसकी पीठ थपथपायी और कहता गया, 'आदमी ख़ुद अपने मर्ज़का डॉक्टर होता है, और आजकल तुम अपनी आलोचना ख़ुद ही करने लग गये हो।'

रमेश जानता था कि मैं उसका मात्र प्रशंसक ही नहीं हूँ, उसका आलोचक भी हूँ।

हो तो खुद जाकर खा लो।'

इस आवाजको रमेशने पहचान लिया। बरसनेके पहले गड़गड़ाती हुई घनघटा-जैसी ही वह आवाज़ थी।

वह चुपचाप पड़ा रहा और किताब खोलकर दूसरा अध्याय पढ़ने लगा।

लोगोंमें जानकारीकी इतनी भूख थी, खासतौरसे इस पिछड़े हुए मुहल्लेके जवानोंमें ज्ञानकी ऐसी प्यास थी कि रमेश अपने लोगोंका मुखिया हो गया था। किरानेकी छोटी-सी दूकानपर, पानवालेके नुक्कड़पर, अथवा उस भूरे-मटमैले दीखनेवाले छोटे-से होटलपर दुनियाकी घटनाओंके बारेमें लोग उससे तरह-तरहके सवाल पूछते; और वह उन्हें समझाता हुआ अपने जवाब देता। उसके विचारोंकी ईमानदारी और गम्भीरता, दरियादिली और फक्कड़पन और उसकी जानकारी लोगोंके दिलको छू लेती और दिमागपर हावी हो जाती।

लेकिन; रमेश ही था कि उनके उन्नयनकी उसने ज्यादा परवाह नहीं की। वह तो इसी बातसे खुश था कि लोग उसके प्रभावमें कितने शीघ्र आ जाते हैं। वह तो समाजकी ऊँचीसे ऊँची सीढ़ीपर चढ़ना चाहता था। लेकिन उस चक्करदार जीनेपर चढ़नेकी योग्यता उसमें न थी। फिर भी अगर उस समाजके कुछ लोग उससे बात कर लें या सभा-सोसाइटियोंमें उद्धत होकर वह अपना रंग जमा दे तो उसे ऐसा लगता था मानो उसने नया किला सर कर लिया हो। पढ़ने-पढ़ाने और बात करनेका उसे नशा था। अपने विचारों-भावों और इरादोंने ही, उसे इतना ज़ोरका धक्का दिया था कि उसके आघातोंमें वह धीरे धीरे सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्रमें बढ़ता चला गया और उसकी आज इतनी ताकत हो गयी थी कि वह 'नेतृत्वकी द्वितीय पंक्ति'में आकर बैठ

लेकिन पैसे कमाना……और इतने पैसे कि घरका और उसका काम चल सके……उसके बूतेके बाहरकी बात थी। उसने लेखनी फेंक दी, डायरी फेंक दी, बाल्जॉककी कहानियाँ उठायीं और पढ़ते-पढ़ते सो गया।

सुबह वह साढ़े आठ बजे उठा। उसके दिमाग़में अफ़सोसका धुँआ था। डायरीके प्रयोगने उसे कोई सहायता न दी। अस्पष्ट दुःस्वप्नकी भाँति, ज़िन्दगीके चित्र उसके दिमाग़में उभरने लगे। उनसे पिण्ड छुड़ानेके लिए अपनी स्त्री गौरीके पास गया। वह बीमार बच्चेको लिये मुँह फुलाये हुए बैठी थी। हाथ-मुँह धोकर, चाय पीकर रमेशने बीबीसे कहा, 'लाओ मैं दवा ले आता हूँ।'

उस समय पौने दस बजे हुए थे। बाहर प्यारी मीठी सुनहली धूप खिली हुई थीं। रमेशकी तबीयत खुश हो गयी, अफ़सोस भाग गया। अब रमेश दुनियाको क़ाबिज़ कर लेगा। उसके दिलमें कलकी मीटिंग-की बातें तैरने लगीं। समाजके रूपान्तरकी तैयारियाँ हो रही हैं। नयी ज़िन्दगीकी ताक़तें उभर रही हैं और अरे रमेश, तू अबतक सोया पड़ा है! वह आगे बढ़ा। सामनेके एक नुक्कड़पर, अपनी चप्पलके लिए, चमारकी दूकानके पास स्थानीय पत्रके एक सम्पादक खड़े थे। रमेशने सलाम ठोंका। उन्होंने गाली देकर बुलाया और कहा……'वाह यार, लेख देते ही रह गये।'

रमेश फीकी हँसी हँसा। कहा कि 'बच्चोंकी बीमारीके कारण वह काम पूरा न कर सका' जो कि सफ़ेद झूठ था। रमेशमें फिरसे अफ़सोसकी लहर दौड़ गयी। जब वह कोई चीज़ नहीं कर सकता है तो वचन क्यों देता है।

लेकिन सम्पादकजीके मैत्रीपूर्ण चेहरेकी हँसती हुई सद्भावनाके वशीभूत होकर रमेशने कहा……'सच मानिए. परसों मैं आपको ज़रूर दे दूँगा।'

मेरी बातें सुनकर, उसने पलटकर व्यंग्यमें जवाब दिया—

'लेकिन मैंने अपनी आलोचना करना छोड़ दिया है, मेरे दोस्त उसे बखूबी कर लिया करते हैं।'

उसके इस स्वरमें पीड़ा-भग्न अहंकार था। अपनी बातें न छोड़नेकी ज़िद थी। मैं उससे विक्षुब्ध नहीं हुआ। मैंने बात बदलते हुए कहा—'यालूके किनारेपर अमरीकी बमबारीकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियाएँ क्या हुईं ?'

वह बुरी तरह हँस पड़ा। उसकी हँसीमें विषाद था, खेद था और निस्सहायता थी। साथ ही आँखोंमें व्यंग्यकी एक कठोर चमक थी। वह व्यंग्य जो स्वयं अपने ऊपर भी था और दूसरोंपर भी।

यह मुझे मालूम था कि घर उसे काटनेको दौड़ता है। उसका कारण था दो भिन्न वातावरण। एक वह जो उसके मनमें है, दूसरा वह जो उसके घरमें है। दुनियाके बारेमें सारी योजनाएँ अपनी जेबमें लेकर चलनेवाले लोगोंके जीवनमें, उनकी सारी सफलताओंके बावजूद अगर मैं उनमें अव्यवस्था, असंगठन और आवारागर्दी देखता हूँ तो, न जाने क्यों, मुझे बहुत बुरा लगता है। रमेश जानता है कि कटु होकर, कठोर होकर मैं उसे क्यों झिड़कारता रहता हूँ।

एक दिन, रमेश रातको बहुत देरसे घरपर पहुँचा। अपनी डायरीमें, बहुत-सी बातें नोट कीं। वह सुबह किस वक्त उठेगा, किस पुस्तकके कितने नोट्स लेगा और कहाँ-कहाँ पत्र लिखेगा। किन-किन मीटिंगोंके लिए उसे भाषण तैयार करना है। किस आदमीसे कौन-सी पुस्तकें प्राप्त होंगी इत्यादि, इत्यादि।

यह सब हो चुकनेके बाद उसे ख़याल आया कि बीवी कह रही थी कि घरमें सामान नहीं है। कैमिस्टकी दूकानसे बच्चोंके लिए कुछ दवाएँ लाना है आदि। ऐसे ख़याल आते ही रमेशकी नानी मर गयी। उसपर दुःखके पहाड़ टूट पड़े। रमेश दुनिया इधरकी उधर कर सकता है,

काम है जो उतना ही महत्त्वपूर्ण है। गपशपमें घण्टा-भर लगा। डॉक्टर-के यहाँ और देर हो गयी। साढ़े ग्यारह बजे रमेश घर पहुँचा। उसकी स्त्री बीमार बच्चेको लिये बैठी थी। अच्छा हुआ कि उस दिन इतवार था।

रमेशके दिलमें यह खटका लगा हुआ था कि बच्चा अधिक दिनों तक जीवित न रह सकेगा। घरमें कोई देख-भाल करनेवाला न था। बेहद ग़रीबी उसने विरासतके रूपमें पायी थी। मध्यमवर्गका होते हुए भी वह उस वर्गका न था। फल यह था कि न तो निचली श्रेणीके लोगों-की लाभदायक आदतें और मनोवृत्तियाँ उसके पास थीं, न मध्यम वर्गके ऐसे प्रधान लाभ उसे उपलब्ध थे जो सामाजिक प्रभाव और बड़ी डिग्रियोंसे प्राप्त होते हैं। उसकी विधवा माँने दूसरोंके घर रोटियाँ सेंकीं और अपने बच्चेको पाल-पोसकर बड़ा किया। नौवें दर्जे तक पढ़ाया। लड़केने आवारागर्दी की। प्रतिष्ठित परिवारोंने उसे गुण्डा समझा, लेकिन उसने अपनी आवारागर्दीमें ही पढ़ाई की, उन्नति की, लीडर बना; किन्तु असंयम और अव्यवस्थाकी आदतें न गयीं। शादी उसने अपने हाथोंसे की और फिर स्त्रीकी तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया।

और आज वही रमेश अपनी अन्धेरी कोठरीमें बैठे हुए सोच रहा था कि बच्चा जीवित न रह सकेगा। कल रातको उसे एक सपना आया था। उसने देखा कि ओवर ब्रिजके उतारपर, सड़कके बीचों-बीच उसकी स्त्री बैठी हुई थी। सड़ककी ढालपर-से, बहुत तेज़ रफ़्तारसे, एक बैलगाड़ी आती है जो स्त्रीपर-से होकर निकल जाती है। रमेश भयानक रूपसे अकुलाकर स्त्री और बच्चोंको ढूँढता है तो पाता है कि वह खुद गाड़ीमें बैठा हुआ है और गाड़ीवालेसे पूछ रहा है कि तुम कौन हो! गाड़ीवाला जवाब देता है—तुम नहीं जानते। तुम तो मेरे मालिक हो। और मैं तुम्हारा सेवक। रमेश ठठाकर हँसता

उसके सम्पादक मित्रने रमेशकी हालत देखी, दीनभाव देखा। सहानुभूतिसे पिघलकर, अधिकार जताते हुए उन्होंने कहा, 'लो यह एडव्हान्स ले जाओ, दस रुपये।'

रमेश एकदम खुश हो गया। उसने सोचा कि खुदा देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। अब वह अपनी पत्नीको बतायेगा कि वह कितना कर्त्तव्यपरायण है। दूसरा लाभ यह भी है कि केमिस्टकी दूकानसे बच्चेके लिए दवा भी आ जायेगी।

सम्पादकसे छुट्टी पाकर ज्यों ही वह आगे बढ़ा, उसने सोचा परसों तक तो लेख दे ही देना पड़ेगा, हर हालमें। ऐसा न हो कि फिर अफसोसका मौका आ जाये। कहीं मैं उसको फिरसे उल्लू न बना दूँ। यह उल्लू बनाना ही तो हुआ; नहीं तो क्या है!

लेकिन किसने किसको उल्लू बनाया? लेखके लिए मेहनत लगती है, सोचना पड़ता है, लिखे हुएको कमसे कम दो बार लिखना पड़ता है। सम्पादकने १० रुपये देकर ५ रुपये कम कर दिये। कुल पन्द्रह होते हैं। लेकिन हर्ज क्या है। पिछले महीने पड़ोसकी बुढ़ियासे बीबीने १० रुपये उधार लिये थे। उसने २ रुपये ब्याजके पहले ही काट लिये और आठ टिकाये और हमें १० वापस देने पड़े।

इन्हीं खयालोंमें रमेश आगे बढ़ता गया कि एक और सज्जन उन्हें मिले। ये उनके रोजके मिलनेवाले थे। उन्होंने पुकारकर जोरसे कहा, 'पण्डित नेहरूका वक्तव्य पढ़ा? अमरीकी हमलोंके बारेमें याल्कूके बिजलीघरोंपर, न?' 'हाँ।'

दोनोंके चेहरोंपर एक-दूसरेको समझनेवाली मुसकराहटें खिल गयीं। सज्जनने प्रस्ताव रखा, 'चलो काफी हाउस चलते हैं, अभी लौट आते हैं।' काफी हाउसमें अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिपर बहस होती रही। युद्ध होगा या नहीं, होगा तो कब होगा, इत्यादि।

रमेशको इस बातका खयाल ही न रहा कि हाथमें एक और भी

घरपर पहुँचते ही मैं क्या देखता हूँ कि उसका कमरा सजा हुआ है और रमेश अपनी बीवीको अखबार पढ़कर सुना रहा है।

दोनोंकी नज़रसे ओट होकर मैं चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा। मुझे बुरी तरह हँसी आ रही थी। यह दृश्य मुझे विलक्षण मालूम हुआ। क्या यह कभी सम्भव है? मैंने अपनेको स्थिर किया और अन्दर घुसते ही घोषणा की,

'अब तुम अपनी आलोचना कर सकते हो, दोस्तोंने तुम्हारी आलोचना करना अब छोड़ दिया।'

उसने झेंपते हुए जवाब दिया 'हाँ, अब मैं नयी ज़िन्दगीकी सारी जिम्मेदारियोंको एक साथ निबाहना चाहता हूँ, लेकिन मेरे लिए इससे तो तुम्हारी आवश्यकता बढ़ जाती है।'

और वह मुसकराता हुआ मेरी तरफ़ देखने लगा।

है। सपना टूट जाता है।

आजका सारा इतवार उसका भ्रष्ट हो गया। दिलमें न मालूम कैसा-कैसा हो रहा था! ऐसी कष्टप्रद स्थितिमें रमेशके पास एक ही रामबाण है""वह है शारीरिक मेहनत।

उसने स्त्रीसे पूछा, लकड़ी फोड़ दूँ। गौरी कुछ न बोली। वह न मालूम क्या सोच रही थी और मन-ही-मन रोती जा रही थी। रमेश उसकी स्थितिसे समझ गया कि आज चूल्हा न सुलगेगा।

वह स्त्रीके पास गया। बच्चा पीला, दुबला, उदास""गोदीमें ढीली गरदन किये बुखारमें पड़ा था। रमेशने बच्चेको चुमकारा। बच्चे-ने आँखें खोली और बापको देखकर मुसकरा दिया। रमेशका जी न मालूम कैसा-कैसा हुआ""मानो दिलके अन्दर आँसुओंके झरने फूट रहे हों।""

रमेश चुपचाप उठा, चूल्हा सुलगाया, चायका पानी रखा और कुल्हाड़ा लेकर सधे हुए हाथोंसे लकड़ी फोड़ी। मेहनतके कारण उसका शरीर पसीनेसे धुल गया। फिर रस्सी कन्धेपर डाली और कुएँकी ओर चल पड़ा। कुएँके पासवाले नीमके पेड़पर कोयल गा रही थी। बरसातकी पहली घटा क्षितिजसे झाँक रही थी। ठीक तीन बजेका समय था।

स्त्रीने बच्चेको चुमकारा। पलनेमें डाल दिया। लोरी गाने लगी। मटकोंमें भरे जानेवाले पानीकी और बालटीकी आवाज स्त्रीके कानोंमें आ रही थी और पतिके कानोंमें गूँज रहा था स्त्रीकी लोरीका स्वर""

जब दो दिन तक रमेश मेरे घर नहीं आया तो मुझे चिन्ता हो गयी। उसका बच्चा कैसा है। उसे पैसोंकी तकलीफ तो नहीं है। (मानो वह कोई कहनेकी बात हो।)

इतनी बेमुरव्वतीसे ठोकर मारी।

उसको दिखाई दिया कि लगभग पचास गजके फ़ासलेपर एक नौजवान एक लड़कीके साथ बातचीन करता हुआ आगे बढ़ा जा रहा दिखाई दे रहा था। दिखाई दे रहा था लड़कीका आधा चेहरा खूबसूरत-सा। और उसका रंगीन आंचल हवामें फड़फड़ा रहा था।

अधेड़ मुसल्मानने भौंहें सिकोड़कर जब उन दोनोंको देखा तो ताड़ गया कि वे एक प्रेमी-प्रेमिका हैं। इस ख़यालसे वह और भी ज़्यादा उत्तेजित हुआ और उसी क्षोभमें उसने चीख़कर पुकारा, 'अबे ओ !…. इधर आओ !'

पुकार सुनकर वे दोनों ठहर गये और पीछे मुड़कर उन्होंने दूर एक तमतमाया रोबदार चेहरा देखा। भय, आतंक तथा विघ्नकी आशंकासे ग्रस्त होकर वे क्षण-भर खड़े रहे, फिर लौट पड़े।

अधेड़ मुसलमानने दोनोंको सिरसे पैर तक देखा और तेजीसे कहा, 'क्यों बे ! देखकर नहीं चलता !'

दोनोंके चेहरोंपर निर्दोष, निरीह भाव था। उनके लेखे इस व्यर्थके आरोपसे उनकी सूरत फीकी पड़ गयी किन्तु ग़ौरसे वे अधेड़ मुसलमानके चेहरेको देखने लगे कि क्या सचमुच उनके किसी तौर-तरीक़ेसे उस व्यक्तिको चोट पहुँची है। नौजवानने अगवानी करते हुए कहा, 'माफ़ कीजिए, क्या हमारे हाथसे कोई खता हुई !' अब उस व्यक्तिका शाही चेहरा और भी चिढ़ गया। उसने चिड़चिड़ाकर कहा, 'जानते हो ! कौन हूँ मैं।'

नौजवान और उसकी प्रेमिका आश्चर्य और आतंकसे घबराकर सिर्फ़ चुप रहे। और व्यथित भावसे देखने लगे।

अधेड़ व्यक्तिको उनकी घबराहट देखकर ज़रा दया आयी और उसे अपना नाम कहनेमें भी हिचकिचाहट हुई। किन्तु उन दोनोंको और घबरा डालनेके उद्देश्यसे उसने कहा—

दो चेहरे

शामका सुनहला केसरिया प्रकाश जंगलमे धीरे-धीरे बैंगनी होने लगा। क्षितिजके पासके वृक्षोमे खोयी हुई मस्जिदकी ऊँची मीनारोमे-से एकपर बैंगनी और दूसरेपर नारगी रंग छाया हुआ था। खुले फैले मैदानके बीच-बीच कही-कही घने वृक्षोमे-से लम्बी-लम्बी प्रकाश छायाएँ लटकती सी दिखाई दे रही थी।

एक वृक्षकी घनी शान्त छायाके घेरेमे चादर डाले एक दाढी-धारी अधेड मुसलमान नमाज़ पढ रहा था। उसका व्यक्तित्व रोबदार था और वह शाही खानदानका मालूम होता था। कभी-कभी वह दोनो हथेलियाँ आगे कर खुदासे कुछ माँगता, उसके होठ बुदबुदाने लगते। उसके चेहरेपर भक्तिके दयनीय नम्र भाव फैलते रहते।

कभी-कभी वह नमाज़के दौरानमे उठ खडा होता और हाथमें हाथ फँसाकर ध्यानमे मग्न हो जाता। फिर वह नीचे बैठता, ललाटसे भूमि स्पर्श करता। तब उसका नितम्ब-पार्श्व ऊपर उठ जाता और कुछ क्षणोंके लिए वह ध्यानमे खो जाता।

ऐसे ही किसी क्षणमे जब उसका नितम्ब-पार्श्व ऊपर उठा हुआ था और ललाट भूमिसे लगा हुआ था उसे एकदम भान हुआ कि किसीने उसके उठे हुए पिछले भागपर ठोकर मार दी है। ठोकर सीधे पीछेसे नहीं वरन् एक बाज़ूसे लगी और दूसरे बाज़ूसे घिसडती हुई निकल गयी।

उसका ध्यान टूटा और वह गौरसे देखने लगा कि किसने उसे

भी, तेरा ध्यान करते हुए भी, दुनियामें जमा रहा, मैं अपनेको भूल न सका, खुदा मुझे माफ़ कर·········।'

जब अकबरने ललाट ज़मीनसे फिर उठाया तो उसकी आँखें गीलेपनमें चमक रही थीं। लेकिन उसके चेहरेपर संध्याका हलका केसरी प्रकाश चमक रहा था।

'मैं हूँ तुम्हारा शहंशाह अकबर!'

नाम सुनकर उस तरुण-तरुणीके चेहरेपर मानो भयकी स्याही पुत गयी।

काटो तो खून नहीं! ...... उन्होंने शहंशाहके पैर पकड़ लिये और कहा, 'हुजूर, जो भी गलती हुई है वह भी अनजानेमें हुई है, आप माफ़ करें।' उनके स्वरमें कातरता थी।

अकबरको कहते हुए सकोच तो हुआ लेकिन कहना जरूरी समझा, 'मेरे करीबसे गुजरते हुए तुमने पीछेसे लात जमा दी और फिर भी कहते हो कि मालूम नहीं।'

यह कहकर जब अकबरने उस नौजवान और उसकी प्रेमिकाकी तरफ फिरसे देखा तो पाया कि उनके चेहरोंपर गहरा भोलापन और मासूमियत है। उसे लगा कि वे झूठ नहीं बोल रहे हैं। अकबर उनके चेहरेके भावको देखता ही रह गया मानो वहाँ आसमान छाया हुआ हो और उसमें एक मस्जिदका सफेद पवित्र गुम्बज दिखाई दे रहा हो। उसने एकदम कहा, 'अच्छा जाओ, भागो! रवाना हो!'

और तब अकबरने पश्चिमकी तरफके आसमानकी ओर फिरसे मुँह करके जब रंगीन धूमको देखा तो उसकी आँखोंके सामने वे दोनों मासूम भोले चेहरे फिरसे खिल उठे...। उसकी अन्दरकी ढँकी मुँदी आवाज़ने बन्धन तोड़कर कहा कि, 'हाँ' वे बातोंमें इतने मशगूल थे, उनके रसमें इतने ज्यादा डूबे हुए थे कि उन्हें मालूम ही न हो सका कि रास्ते चलते उन्होंने एक ठोकर मार दी है।'

अकबरने आँखें मूँद लीं। ललाट जमीनपर टेककर खुदासे कहने लगा—

'या परवरदिगार, वे दोनों इश्कमें इतने डूबे हुए हैं कि वे इस दुनियामें ही नहीं रहे। लेकिन, अभागा मैं, तेरी इबादतमें होते हुए

था। परन्तु इस नगरके मुहल्लेमें बीस साल बिता चुकनेवाला यह पच्चीस सालका युवक पुराना नहीं रह गया था। उसकी आत्मा एक नये महीन चश्मेसे स्टेशनको देख रही थी।

टिकिट देकर स्टेशनपर आगे बढ़ा तो देखता है कि ताँगे निर्जल अलसाये बादलोंकी भाँति निष्प्रभ और स्फूर्तिहीन ऊँघते हुए चले जा रहे हैं। युवकने इसीसे पहचान लिया कि यह विशेषता इस नगरकी अपनी चीज़ है।

दूकानें सब बन्द हो चुकी थी, जिनके पास नीचे सड़कपर आदमी सिलसिलेवार सो रहे थे। उनके साथी और उन्हीके समान सभ्य पशुओंमें-से निर्वासित श्वान-जाति दुबकी इधर-उधर पड़ी हुई थी। युवकने पैर बढ़ाने शुरू कर दिये। उखड़ी हुई डामरकी काली सड़कपर बिजलीकी धुँधली रोशनी बिखर रही थी। एक ओर दूकानें, फिर सराय, फिर अफ़ीम-गोदाम, फिर एक टुटपुँजिया म्युनिसिपल पार्क, फिर एक छोटा चौराहा जहाँ डनलप टॉयरके विज्ञापनवाली दुकान और उसके सामने लाल पम्प, फिर उसके बाद कॉलेज! और इस तरह इस छोटे शहरकी बौनी इमारतें और नक़ली आधुनिकता इसी सड़कके किनारे-किनारे एक ओर चली गयी थी। दूसरी ओर रेलका हिस्सा जहाँ शंटिंगका सिलसिला इस समय कुछेक घण्टोंके लिए चुप था।

युवकको रातका यह वातावरण अत्यन्त प्रिय मालूम हुआ। गरमीके दिन थे। फिर भी हवा बहुत ठण्डी चल रही थी। सड़कके खुले हिस्सेमें जहाँ रेलके तार जा रहे थे, नीम और पीपलके वृक्षके पत्ते झिरमिर-झिरमिर कर रहे थे। रेलकी पटरियोंके उधर मालवेका पठार शुरू हो जाता था, जहाँके सघन आमके बड़े-बड़े दरख़्त दूरसे ही दीख रहे थे। उसी मैदानपर, एक ओर, एक नवीन मुहल्ला, शहरके अमीरों, व्यापारियों, अफ़सरोंका उपनिवेश सिकुड़ा हुआ था।

सब दूर शान्ति थी। रातका गाढ़ मौन था। युवकके रोजमर्राके कर्मप्रधान जीवनमें रोज रातका एक सोनेका समय था, और सुबहके साढ़े

अन्धेरेमें

एक रातको बारह बजे, ट्रेनसे एक युवक उतरा। स्टेशनपर लोग एक कतारमे खड़े थे और ज्यादा नही थे। इसलिए ट्रेनसे नीचे आनेमे उसको ज्यादा कठिनाई नही हुई। स्टेशनपर बिजलीकी रोशनी थी, परन्तु वह रातके अँधियारेको चीर न सकती थी। और इसलिए मानो रात अपने सघन रेशमी अँधियारेमे तम्बूनुमा घर हो गयी थी जिसमें बिजलीके दीये जलते हो। उतरते ही युवकको प्लैटफार्मकी परिचित गन्धने, जिसमे गरम धुआँ और ठण्डी हवाके झोके, गरम चायकी वास और पोर्टरोंके काले लोहेमे बन्द मोटे काँचोंसे सुरक्षित पीली ज्वालाओंके कन्दीलेपर-से आती हुई अजीब उग्र वास, इत्यादि सारी परिचित ध्वनियाँ और गन्ध थे, उसकी संज्ञासे भेंट की। युवकके हृदयमें जैसे एक दरवाजा खुल गया था, एक ध्वनिके साथ और मानो वह ध्वनि कह रही थी—आ गया, अपना आ गया....!

युवक झटपट उतरा। उसके पास कुछ भी सामान नही था, कोयलेके कणोमे भरे हुए लम्बे बालोंमे हाथोसे कघी करता हुआ वह चला। पाँच साल पहले वह यही रहता था। इन पाँच सालोंकी अवधिमे दुनियामे काफी परिवर्तन हो गया, परन्तु उस स्टेशनपर परिवर्तन आना पसन्द नही करता था। युवकने अपने पूर्वप्रिय नगरकी खुशीमे एक कप चाय पीना स्वीकार किया। और वही स्टॉलपर खड़ा होकर कपबशीकी आवाज सुनता हुआ इधर-उधर देखने लगा। सब पुराना वातावरण

तरहका आत्मविश्वास-सा देता था। परन्तु···आज····

वह वैठनेवाला जीव न था। रास्तेपर पैर चल रहे थे। मन कहीं घूम रहा था। दूसरे उसे अत्यन्त आत्मीय एकान्त, जहाँ उसकी सहज प्रवृत्तियोंका खुला वालिश खिलवाड़ हो, वहुत दिनोंसे नहीं मिला था!

उसने सोचना शुरू किया कि आखिर क्यों यह अजीव जलके निर्मलिन सहस्र स्रोतों-सी भावना उसके मनमें आ गयी!

उसको जहाँ जाना था, वहाँका रास्ता उसे मिल नहीं सकता था। एक तो यह कि पाँच सालके वाद शहरकी गलियोंको वह भूल चुका था। दूसरे जिस स्थानपर उसे जाना था वह किसी खास ढंगसे उसे अरुचिकर मालूम हो रहा था! इसलिए लक्ष्यस्थानकी वात ही उसके दिमाग़से ग़ायव हो गयी थी।

पैर चल रहे थे या उसके पैरके नीचेसे रास्ता खिसक रहा था, यह कहना सम्भव नहीं, परन्तु यह जरूर है कि कुछ कुत्ते—चिर जाग्रत रक्षककी भाँति खड़े हुए—भूंक रहे थे।

उसके मनमें किसी अजान स्रोतसे एक घरका नक़शा आया। उसका भी वराण्डा इसी तरह वाँसकी चिमटियोंसे वना हुआ था। वहाँ भी वासन्ती रातोंमें नीमके झिरिर-मिरिरके नीचे खाटें पड़ी रहती थीं। युवकको एक धुंधली सूरत याद आती है, उसकी वहनकी—और आते ही फ़ौरन चली जाती है। वस चित्र इतना ही। यह मत समझिए कि उसके माता-पिता मर गये! उसके भाई हैं, माता-पिता हैं। वे सव वहीं रहते हैं जिस शहरमें वह रहता है।

युवक हँस पड़ा। उसे समझमें आ गया कि क्यों उन क्वार्टरोंको देखकर एक आत्मीयता उमड़ आयी। मजदूर चालोंमें, जहाँ वह नित्य जाता है, या उसके अमीर दोस्तोंके स्वच्छ सुन्दर मकानोंमें, जहाँसे वह चन्दा इकट्ठा करता, चाय पीता, वाद-विवाद करता और मन-ही-मन अपने महत्त्वको अनुभव करता है—वहाँसे तो उसे कोई आत्मीयताकी

आठके अनन्तर जागनेका समय था। वैदिक ऋषि-मनीषियोंके उषःसूक्त-से लगाकर तो अत्याधुनिक छायावादियोंके 'बीती विभावरी जाग री, अम्बर पनघटमें डुबो रही तारा घट ऊषा नागरी'का दर्शन इस युवकने इन गये पाँच सालोंमें बहुत कम किया है!

अपने उस कर्म-जटिल क्षेत्रको पीछे छोड़कर जैसे मनुष्य अपनी अरुचिकर यादोंसे बचना चाहता हो—यह युवक इस रातमें पा रहा था कि वातावरणमें पठार-मैदानसे उठकर आनेवाली हवाकी उत्फुल्ल और मीठी ताज़गीके साथ-ही-साथ मानो मनुष्योंकी सोयी हुई चुपचाप आत्माएँ अपनी गाढ़ नीरवतामें अधिक मधुर होकर वनकी सुगन्ध और वृक्षके मर्मरमें मिल गयी हैं।

रेलकी पटरियोंके पार—रेलवे यार्डमें ही वहाँके मध्यवर्गीय नौकरों-के क्वार्टर्स बने हुए थे। बाहर ही, जो उसका आँगन कहा जा सकता है; दो खाटें समानान्तर बिछी हुई थीं जिनके बीचमें एक छोटा-सा टेबल रखा हुआ था। उसपर एक आधुनिक लैम्प अपनी अध्ययन-समर्पित रोशनी डाल रहा था। एक खाटपर एक पुरुष कोई पुस्तक पढ़ रहा था और दूसरीपर घोर निद्रा थी। लैम्पकी धुंधली रोशनीमें घर-के सामनेवाले बाज़ूपर एक काला-सा अधखुला दरवाज़ा और बाँसकी चिमटियोंसे बनाये गये बन्द बराण्डेके लेटे-से चतुष्कोण साफ दीख रहे थे। उस घरकी पंक्तिमें ही कई क्वार्टर्स और दीख रहे थे, उसी तरह पंक्तिबद्ध खाटें बराबर यथास्थान लगी हुई चली गयी थीं।

युवकके मनमें एक प्यार उमड़ आया! ये घर उसे अत्यन्त आत्मीय-जैसे लगे, मानो वे उसके अभिन्न अंग हों!

यही बात उसकी समझमें नहीं आयी। इस अजीब आनन्दमय भावनाने उसके मनके सन्तुलित तराज़ूको झटके देने शुरू कर दिये। वह भावनाओंसे अब इतना अभ्यस्त नहीं रह गया था कि उनका आदर्शी-करण कर सके। रोज़का कठिन, शुष्क, दृढ़ जीवन उसे एक विशेष

दाढ़ीपर छह बाल थे, और ओठोंपर तो थे ही नहीं। चालीस सालकी उम्र हो चुकी थी पर बालोंने उनपर कृपा नहीं की थी! नाक उनकी बुद्धिसे व्यापक थी, काले डोरेकी गुण्डीकी भाँति चमक रही थी। आँखमें एक चुपचाप दयनीयता झाँक उठती। वह कोई मुसीबतज़दा प्राणी था—शायद उसे सूज़ाक था—या उसकी घरवाली दूसरेके साथ फ़रार हो गयी थी! या वह किसी अभागी बदसूरत-वेश्याका शरीर-ज़ात था। उसे न जाने कौन-सी पीड़ा थी जो चार आदमियोंमें प्रकट नहीं की जा सकती थी। वह पीड़ा-थीड़ा तो दूसरोंके आनन्द और निर्बाध हास्यको देखकर चुपचाप निविड़ आँखोंमें चमक उठती थी! वह इस समय भी चमक रही थी, किसीने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। उसके सामने क्रमानुसार चाय आ गयी और वह फुर-फुर करते हुए पीने लगा।

ताँगेवाले महाशयका ताँगा वहीं दूकानके सामने सड़कके दूसरे किनारे खड़ा था। घोड़ा अपने मालिककी भाँति बड़ा चढ़ैल और गुस्सैल था। एक ओर तो वह बिजलीकी रोशनीमें चमकनेवाली हरी घासको बादशाहकी भाँति खा रहा था, तो दूसरी ओर आध घण्टेमें एक बार अपनी टाँग ताँगेमें मार देता था। उसके घास खानेकी आवाज़ लगातार आ रही थी और उसका भव्य सफ़ेद गम्भीर चेहरा होटलको अपेक्षाकी दृष्टिसे देख रहा था।

ताँगेवाले महाशयने चाय पीनी शुरू की। तगड़ा मुँह था। बेलौस सीधी नाक थी और उजला रंग था। ठाठदार मोतिया साफ़ा अब भी बँधा हुआ था। बोल-चाल निहायत शुस्ता और सलीक़ेसे भरी थी। चेहरापर मार्दव था जो कि किसी अक्खड़ बहादुर सिपाहीमें हो सकता है। आज दिनमें उन्होंने काफ़ी कमाई की थी; इसीलिए रातमें जगनेका उत्साह बहुत अधिक मालूम हो रहा था।

दूकानके अन्दर झाड़ूकी कर्कश आवाज़ और पानीकी खलखल

फसफसाहट नहीं हुई। हमारा युवक अपनेपर ही हँसने लगा। एक सूक्ष्म, मीठा और कटु हास्य।

दूर, एक दूकानपर साठ नम्बरका खास बेलजियमका बिजलीका लट्टू जल रहा था। सड़कपर ही कुरसियाँ पड़ी थीं, बीचमें टेबल था। एक आरामकुरसीपर लाल भैरोगढ़ी तहमत बाँधे हुए ताँगेवाले साहब बैठे हुए बिस्कुट खा रहे थे। दूसरी कुरसीपर एक निहायत गन्दा, पीछेसे फटी हुई चड्डी पहने, उघाड़े बदन, लड़का कभी बिस्कुटोंके चूरे खानेकी तरफ या भाफ उठाते हुए टेबलपर रखे चायके कपकी तरफ देखता हुआ बैठा था! दूसरी कुरसीपर दूसरे मुसलमान सज्जन रोटी और मांसकी कोई पतली वस्तु खा रहे थे और बहुत प्रसन्न मालूम हो रहे थे। जो होटलका मालिक था वह एक पैरपर अधिक दबाव डाले—उसको खूँटा किये खड़ा था, सिगरेट पी रहा था और कुछ खास बुद्धिमानीकी बातें करता था जिसको सुनकर रोटी और मांसकी पतली वस्तुको दोनों हाथोंका उपयोग कर खानेवाले मुसलमान सज्जन 'अल्लाहो अकबर' 'अल्ला रहम करे' इत्यादि भावनाप्लुत उद्‌गारोंसे उसका समर्थन करते जाते थे। सिगरेटका कश वह इतनी ज़ोरसे खींचता था कि उसका ज्वलन्त भाग बिजलीकी भयानक रोशनीमें भी चमक रहा था। उसका हाथ आरामसे जंघा-क्षेत्रमें भ्रमण कर रहा था।

दूकानके अन्दरसे पानीको झाड़ूसे फेंकनेकी क्रियामें झाड़ूकी कर्कश दाँत पीसती-सी आवाज़ और पानीके ढकेले जानेकी बालिश ध्वनि आ रही थी, साथ ही उसके छींटे छोटे-छोटे कंकड़ोंकी भाँति लगातार बाहर उन्नत-वक्र रेखा-मार्गसे चले आ रहे थे। बिजलीका लट्टू दरवाज़ेके ऊपर लगे हुए कवरके बहुत नीचे लटक रहा था, जिसपर लगातार गिरनेवाले छींटे सूखकर धब्बे बन रहे थे।

इतनेमें पुलिसके एक गश्तवान सिपाही लाल पगड़ी पहने और खाकी पोशाकमें आकर बैठ गये। वे भी मुसलमान ही थे। उनकी

मत बाँधे, बहुत दुबला, नाटे क़दका एक अधेड़ हँसमुख आदमी था। वह बहुत बातूनी, और बहुत खुशमिज़ाज आदमी और अश्लील बातोंसे घृणा करनेवाला, एक खास ढंगसे संस्कारशील और मेहनती मालूम होता था। उसने कहा, 'मौलवी सॉ'ब, दुनिया यों ही चलती रहेगी। मैंने कई कारोबार किये। देखा, सबमें मक्कारी है। और कारोबारीकी निगाहमें मक्कारीका नाम दुनियादारी है। पुलिसवाले भी मक्कार हैं—ताँगेवाले कम मक्कार नहीं हैं। वह ज़ैनुल आबेदीन-मिर्ज़ाबाड़ीमें रहनेवाला....सुना है आपने क़िस्सा!'

मौलवी साहब ठहाका मारकर हँस पड़े। या अल्लाह कहते हुए दाढ़ीपर दो बार हाथ फेरा और अपनी उकताहटको छिपाते हुए—मौलवी साहबको एक कप चाय और बिस्कुट मुफ़्त या उधार लेना था—आँखोंमें मनोरंजक विस्मय-कुढ़कर होटलवालेकी बात सुनने लगे।

होटलवालेने अपने जीवनका रहस्योद्घाटन करनेसे डरकर बातको बदलते हुए कहा, 'मैं आपको क़िस्सा सुनाता हूँ। दुनियामें बदमाशी है, बदतमीज़ी है। है, पर करना क्या? गालियोंसे तो काम नहीं चलता, क्यों रहीमबख़्श (ताँगेवालेकी ओर संकेतकर) ताँगेवाले बहुत गालियाँ देते हैं! दूसरे, सड़कपर-से गुज़रती हुई औरतोंको देख—चाहे वे मारवाड़िनियाँ ही हों ढिल्लमढाल पेटवाली बस इन्हें फ़ौरन लैला याद आ जाती है! यह देखकर मेरी तो रूह काँपती है। मौलवी सॉ'ब, मेरा दिल एक सच्चे सैयदका दिल है! एक दफ़ा क्या हुआ कि हज़रत अली अपने महलमें बैठे हुए थे। और राज-काज देख रहे थे कि इतनेमें दरबानने कहा कि कुछ मिस्री सौदागर आये हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। अब उनमें-का सौदागर एक आलिम था।'

मौलवी सिर्फ़ उसके चेहरेको देख रहे थे जिसपर अनेक भावनाएँ उमड़ रही थीं जिससे उसका चिपका-काला चेहरा और भी विकृत मालूम होता था। दूसरे वह यह अनुभव कर रहे थे कि यह अपना

ध्वनि बन्द हो गयी। छोटी-छोटी बूँदे टपकानेवाली मैली झाड़ू लिये एक पन्द्रहका लड़का, एक आँखसे काना, दरवाजेमें खड़ा हो गया। वह एक गन्दी बनियान पहने हुए और घुटनेपर-से फटे पाजामेको कमरपर इकट्ठा किये खड़ा था कि मालिकका अब आगे क्या हुक्म होता है। परन्तु बाहर मजलिस जमी थी। लाल साफेवाला सिपाही बड़ी रुचिके साथ उसे सुन रहा था। चाहता था कि वह भी कुछ कहे''''।

इतनेमें इन लोगोको दूरसे एक छाया आती हुई दिखाई दी। सब लोगोंने सोचा कि इस बातपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं। पर धीरे-धीरे आनेवाली उस छायाका सिर्फ पैण्ट ही दिखायी दिया और कुछ थकी-सी चाल। युवक चुपचाप उन्हीकी ओर आया और हलकी-सी आवाजमें बोला 'चाय है?' उत्तरमें 'हाँ' पाकर और बैठनेके लिए एक अच्छी आरामदेह कुरसी पाकर वह खुश मालूम हुआ। लोगोंने जब देखा कि चेहरेसे कोई खास आकर्षक या असाधारण आदमी मालूम नही होता, तब आश्वस्त हो, साँस लेकर बातें करने लगे!

लाल पगड़ीवाला दयनीय प्राणी कुछ बोलना चाहता था। इतनेमें उसके दो साथी दूरसे दिखाई दिये! उन्हे देखकर वह अत्यन्त अनिच्छा-से वहाँसे उठने लगा। उसने सोचा था कि शायद है कोई, बैठनेको कहे। परन्तु लोगोको मालूम भी नहीं हुआ कि कोई आया या और जा रहा है!

'माधव महाराजके जमानेमें ताँगेवालोंको ये आफत नहीं थी मौलवी साँ'ब! मैंने बहुत जमाना देखा है! कई सुपरडण्ट आये, चले गये, कोतवाल आये, निकल गये। पर अब पुलिसवाला ताँगेमें मुफ्त बैठेगा भी, और नम्बर भी नोट करेगा''''' ताँगेवालेने कहा।

होटलवाला जो अब तक मौलवी साहबसे कुछ खास बुद्धिमानीकी बात कर रहा था, उसने अब जोरसे बोलना शुरू किया! धोतीकी तह-

अलीकी आँखें किसी ख़ास बेचैनीसे चमक रही थीं !'

'वे रेशमका लम्बा शाही लबादा पहने हुए थे। उन्होंने उसके बन्द खोले।'

'सौदागरने आश्चर्यसे देखा कि हज़रत अली मोटे बोरेके कपड़े अन्दरसे पहने हुए हैं।'

'सौदागरने सिर नीचा कर लिया।'

'सैयद होटलवालेकी आँखोंमें आँसू आ गये। मौलवी साहबने सिर नीचा कर लिया, मानो उन्हें सौ जूते पड़ गये हों। चायकी गरमी सब ख़तम हो गयी। ताँगेवालेको इसमें ख़ास मज़ा नहीं आया। युवक अपनी कुरसीपर बैठा हुआ ध्यानसे सुन रहा था।'

होटलवालेने कहा, 'असली मज़हब इसे कहते हैं। मेरे पास मुस्लिम लीगी आते हैं! चन्दा माँगते हैं। मुस्लिम क़ौम निहायत ग़रीब है! मुझसे पाकिस्तान नहीं माँगते। मुझसे पाकिस्तानकी बातें भी नहीं करते। हिन्दू-मुस्लिम इत्तेहादपर मेरा विश्वास है। लेकिन मैं ज़रूर दे देता हूँ। 'क़ौमी-जंग' अख़बार देखा है आपने? उसकी पॉलिसी मुझे पसन्द है। लाल बावटेवालोंका है। मैं उन्हें भी चन्दा देता हूँ। मेरा ममेरा भाई 'बिरला मिल'में है। खाता कमेटीका सेक्रेटरी है। वह मुझसे चन्दा ले जाता है।'

युवक अब वहाँ बैठना नहीं चाहता था। फिर भी, सैयद साहबकी बातोंको पूरा सुन लेनेकी इच्छा थी। मालूम होता था, आज वे मज़ेमें आ रहे हैं।

रात काफ़ी आगे बढ़ चुकी थी। होटलके सामने म्युनिसिपल बगीचे-के बड़े-बड़े दरख़्त रातकी गहराईमें ऊँघ-से रहे थे जिनके पीछे आधा चाँद, मुस्लिम नववधूके भालपर लटकते हुए अलंकारके समान लग रहा था।

नवयुवक जब उठा और चलने लगा तो मालूम हुआ कि उसके पीछे

ज्ञान बघार रहा है और ज्ञानका अधिकार तो उन्हें है। तीसरे, उन्होंने यह योग्य समय जानकर कहा, 'भाई, एक कप चाय और बुलवा दो।'

चायका नाम सुनकर कुरसीपर बैठे हुए युवकने कहा, 'एक कप यहाँ भी।'

पीछेसे फटी चड्डी पहने हुए गन्दा लड़का ऊँघ रहा था! वह ऊँघता हुआ ही चाय लाने लगा। ताँगेवाला रहीमबख्श बातोंको गौरसे सुन रहा था। वह जानना चाहता था कि इस कहानीका ताँगेवालोंसे क्या सम्बन्ध है!

होटलवालेने कहना शुरू किया, उनमे-का एक सौदागर आलिम था। उसने हज़रत अलीका नाम सुन रखा था कि गरीबोंके ये सबसे बड़े हिमायती हैं। शानो-शौकत बिलकुल पसन्द नही करते। और अब देखता क्या है कि महलकी दीवारें संगमरमरसे बनी हुई है, जिसमे ख्वाब-कोहके हीरे दरवाज़ोंके मेहराबोंपर जड़े हुए हैं और चबूतरा काले चिकने संगमूसेका बना हुआ है। हरे-हरे बाग है और फव्वारे छूट रहे हैं। वह मन-ही-मन मुसकराया। गरमी पड रही थी, और रूमालसे बँधे हुए सिरसे पसीना छूट रहा था।

'हज़रत अलीके सामने जब मालकी कीमत तयकी हो चुकी, तो सौदागर उनकी मेहरबान सूरतसे खिंचकर बोला कि 'बादशाह सलामत! सुना था कि हज़रत अली गरीबोंके गुलाम है। पर मैंने कुछ और ही देखा है। हो सकता है, गलत देखा हो।'

सौदागर अपना गट्ठा बाँधते-बाँधते कह रहे थे। हज़रत अलीकी आँखसे एक बिजली-सी निकली। सौदागरने देखा नही, उसकी पीठ उधर थी, वह अपने मालका गट्ठा बाँध रहा था!

हज़रत अलीने कहा, 'ज्यादा बातें मैं आपसे नही कहना चाहता। आप मुझे इस वक़्त महलमे देखते हैं, पर हमेशा यहाँ नही रहता। बाज़ारमे अनाजके बोरे उठाते हुए मुझे किसीने नही देखा है। हज़रत

उस अर्द्ध-वृद्धने आते ही अपनी ठेठ प्रकृतिसे उत्सुक होकर पूछा, 'आप कहाँ रहते हैं ?'

वृद्धके चेहरेपर स्वाभाविक अच्छाई हँस रही थी। इस नये शहरके (यद्यपि नवयुवक पाँच साल पहले यहीं रहता था) अजनबीपनमें उसे इस मौलवीका स्वाभाविक अच्छाईसे हंसता चेहरा प्रिय मालूम हुआ। उसने कहा, 'मैं इस शहरसे भलीभाँति वाक़िफ़ नहीं हूँ। सरायमें उतरा हूँ। नींद नहीं आ रही थी, इसलिए बाहर निकल पड़ा हूँ।'

होटलमें बैठा हुआ यह वृद्ध मौलवी सैयदसे हार गया था, मानो उसकी विद्वत्ता भी हार गयी थी। इस हारसे मनमें उत्पन्न हुए अभाव और आत्मलीन जलनको वह शान्त करना चाहता था। 'सैयद साँ'ब बहुत अच्छे आदमी हैं, हम लोगोंपर उनकी बड़ी मेहरबानी है।'

नवयुवकने बात काटकर पूछा, 'आप कहाँ काम करते हैं ?'

'मैं मस्जिदके मदरसेमें पढ़ाता हूँ। जी हाँ, गुज़र करनेके लिए काफ़ी हो जाता है।' उसकी आँखें सहसा म्लान हो गयीं और वह चुप होकर, गरदन झुकाकर, नीचे देखने लगा। फिर कहा, 'जी हाँ, दस साल पहले शादी हो चुकी थी। मालूम नहीं था कि वह गहने समेट करके चम्पत हो जायगी।....तबसे इस मस्जिदमें हूँ।'

युवकने देखा कि बूढ़ा एक ऐसी बात कह गया है जो एक अपरिचितसे कहना नहीं चाहिए। बूढ़ेने कुछ ज्यादा नहीं कहा। परन्तु इतने नैकट्य की बात सुनकर युवककी सहानुभूतिके द्वार खुल गये। उसने बूढ़ेकी सूरतसे ही कई बातें जान लीं, वही दुःख जो किसी-न-किसी रूपमें प्रत्येक कुचले मध्य-वर्गीयके जीवनमें मुँह फाड़े खड़ा हुआ है।

'जी हाँ, मस्जिदमें पाँच साल हो गये, पन्धरा रुपया मिलते हैं, गुजर कर लेता हूँ। लेकिन अब मन नहीं लगता। दुनिया सूनी-सूनी-सी लगती है। पर इस लड़ाईने एक बात और पैदा कर दी है--दिलचस्पी ! रेडियो सुननेमें कभी नागा नहीं करता। रोज़ कई अख़बार टटोल लेता

भी कोई चल रहा है। उन दोनोंके पैरोंकी आवाज गूँज रही थी। परन्तु चाँदकी तरफ (जिसकी काली पृष्ठभूमि भी कुछ आरण्य लिये थी, मानो किसी मुग्ध रुचिर चेहरेपर खिली हुई लाल मिठास हो) जो घने दरख्तोंके पीछेसे उठ रहा था, वह युवक मुँह उठाये देखता जा रहा था। विशाल, गहरा काला, शुक्रतारकालोकित आकाश और नीचे निस्तब्ध शान्ति जो दरख्तोंकी पत्तियोंमें भटकनेवाले पवनकी क्रीड़ामें गा उठती थी।

युवक ऐसी लम्बी एकान्त रातमें अर्ध-अपरिचित नगरकी राहमें अनुभव कर रहा था कि मानो नग्न आसमान, मुक्त दिशा और (एकाकी स्वपथचारी सौन्दर्यके उत्साह-सा, व्यक्तिनिरपेक्ष मस्त आत्म-धाराके खुमार-सा) नित्य नवीन चाँदसे लाखों शक्ति-धाराएँ फूटकर नवयुवकके हृदयमें गिर रही हों। नग्न, ठण्डे पाषाण-आसमान और चाँदकी भाँति ही—उसी प्रकार, उसका हृदय नग्न और शुभ्र शीतल हो गया है। द्रव्यकी गतिमयी धारा ही उसके हृदयमें बह रही है। पाषाण जिस प्रकार प्रकृतिका अविभाज्य अंग है, मनुष्य प्रकृतिपर अधिकार करके भी अपने रूपसे उसका अविभाज्य अग है।

चाँद धीरे-धीरे आसमानमें ऊपर सरक रहा था। वृक्षोंका मर्मर रातके सुनसान अन्धेरेमें स्वप्नकी भाँति चल रहा था, परस्पर-विरोधी विचित्र गति तालके संयोग-सा।

जो छाया दो कदम पीछे चल रही थी, वह नवयुवकके साथ हो गयी। नवयुवकने देखा कि सफ़ेद, नाजुक, लाठीके हिलते त्रिकोणपर चाँदकी चाँदनी खेल रही है; लम्बी और सुरेख नाककी नाज़ुक कगार-पर चाँदका टुकड़ा चमक रहा है जिससे मुँहका करीब-करीब आधा भाग छायाच्छन्न है। और दो गहरी छोटी आँखें चाँदनी और हर्षसे प्रतिबिम्बित हैं। उस वृद्ध मौलवीके चेहरेको देखकर नवयुवकको डी० एच० लॉरेन्सका चित्र याद आ गया!

देती हैं। उसने चालीस ठीक कहा था और नवयुवकको भी उसकी बात-पर अविश्वास करनेकी इच्छा न हुई।

'ओफ्फो:, तो आप जवान हैं।' युवकने थमकर आगे कहा, 'तो आपका दिमाग़ लड़ाईपर ज़रूर चलता होगा....'

'अरे, साहब कुछ न पूछिए, सैयद साहब मुझसे परेशान हैं।'

'आप 'क़ौमी जंग' पढ़ते हैं? आपके होटलमें तो मैंने अभी ही देखा है।'

'क़ौमी जंग' तो हमारी मस्जिदमें भी आता है! हमारे सबसे बड़े मौलवी परजामंडलके कार्यकर्ता हैं। जमीयत-उल-उलेमा हिन्दके मुअ-ज्जिज़ हैं। वहींके उलेमा है। सब तरहके अखबार ख़रीदते हैं। यहाँ उन्होंने मुस्लिम-फारवर्ड ब्लाक खोल रखा है।'

युवकको यहाँकी राजनीतिमें उलझनेकी कोई ज़रूरत नहीं थी। फिर भी, उससे अलग रहनेकी भी कोई इच्छा नहीं थी। इतनेमें एक गली आ गयी जिसमें मुड़नेके लिए मौलवी तैयार दिखाई दिया। युवकने सिर्फ़ इतना ही कहा, 'किताबोंके लिए हम आपकी मदद करेंगे। अब तो मैं यहाँ हूँ कुछ दिनोंके लिए। कहाँ मुलाक़ात होगी आपसे?'

'सैयद साहबकी होटलमें। जी हाँ, सुबह और शाम!'

मौलवी साहबके साथ युवकका कुछ समय अच्छा कटा। वह कृतज्ञ था। उसने धन्यवाद दिया नहीं। उसकी ज़िन्दगीमें न मालूम कितने ही ऐसे आदमी आये हैं जिन्होंने उसपर सहज विश्वास कर लिया, की ज़िन्दगीमें एक निर्वैयक्तिक गीलापन प्रदान किया। जब कभी युवक उनपर सोचता है तो अपने लिए, अपने विकासके लिए उसका ऋणी अनुभव करता है। उनके झरनोंने उसकी ज़िन्दगीको एक नदी बना दिया। उनमें-से सब एक सरीखे नहीं थे। और न उन सबको सने अपना व्यक्तित्व दे दिया था। परन्तु उनके व्यक्तित्वकी काली याओं, कण्टकों और जलते हुए फ़ास्फोरिक द्रव्यों, उनके दोषोंसे उसने

उनके जो उसकी धड़कनों और रक्तके साथ मिल गये हैं ! हकीम मरीज़ोंको फ़ौरन भूल जाते हैं; और मर्ज़के लिए और मर्ज़के साथ-साथ वे याद आते हैं। परिणामतः उसकी सहज उष्णता पाकर व्यक्ति उसके साथ एक हो जाते, अपनेको नग्न कर देते; और फिर उससे नाना प्रकारकी अपेक्षाएं करने लगते जो सम्भव होना असम्भव था।

मौलवी जब गलीमें मुड़कर गया तो युवककी आँखें उसपर थीं। मौलवीका लम्बा, दुबला और श्वेत वस्त्रावृत सारा शरीर उसे एक चलता-फिरता इतिहास मालूम हुआ। उसकी दाढ़ीका त्रिकोण, आँखोंकी चपल-चमक और भावना-शक्तियोंसे हिलते कपोलोंका इतिहास जान लेनेकी इच्छा उसमें दुगुनी हो गयी।

तब सड़कके आधे भागपर चाँदनी बिछी थी और आधा भाग चन्द्रके तिरछे होनेके कारण छायाच्छन्न होकर काला हो गया था। उसका कालापन चाँदनीसे अधिक उठा हुआ मालूम हो रहा था।

युवकके सामने समस्याएँ दो थीं। एक आरामकी, दूसरी आरामके स्थानकी। और दो रास्ते थे। एक तो, कि रात-भर घूमा जाय—रातके समाप्त होनेमें सिर्फ साढ़े तीन घण्टे थे और दूसरे, स्टेशनपर कहीं भी सो लिया जाय !

कुछ सोच-विचारकर उसने स्टेशनका रास्ता लिया।

उसके शरीरमें तीन दिनके लगातार श्रमकी थकान थी। और उसके पैर शरीरका बोझ ढोनेसे इनकार कर रहे थे। परन्तु जिस प्रकार ज़िन्दगीमें अकेले आदमीको अपनी थकानके बावजूद भी भोजन, खुद ही तैयार करना पड़ता है—तभी तो पेट भर सकता है—उसी प्रकार उसके पैर चुपचाप, अपने दुःखकी कथा अपनेसे ही कहते हुए अपने कार्यमें संलग्न थे।

उसको एक बार मुड़ना पड़ा। वह एक कम चौड़ा रास्ता था जिसके दोनों ओर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ चुपचाप खड़ी थीं, जिनके

नाक-भौं नही सिकोड़ी थी। अगर वह स्वयं कभी आहत हो जाता, तो एक बार अपना धुँआ उगल चुकनेके बाद उनके व्रणोंको चूमने और उनका विष निकाल फेंकनेके लिए तैयार होता। उनके व्यक्तित्वकी बारीकसे बारीक बातोंको सहानुभूतिके माइक्रोस्कोप (वृहद्दर्शक ताल) से बड़ा करके देखनेमे उसे वही आनन्द मिलता था जो कि एक डॉक्टर को। और उसका उद्देश्य भी एक डॉक्टरका ही था। उसमें-का चिकित्सक एक ऐसा सीधा-सादा हकीम था, जो दुनियाकी पेटेण्ट दवाइयोंके चक्करमे न पड़कर अपने मरीजोंमे रोज सुबह उठते व्यायाम करने, दिमाग़को ठण्डा रखने और उसको दो पैसेकी दो पुडिया शहदके साथ चाट लेनेकी सलाह देता था। सहानुभूतिकी एक किरण, एक सहज स्वास्थ्यपूर्ण निर्विकार मुसकानका चिकित्सा-सम्बन्धी महत्त्व सहानुभूतिके लिए प्यासी, लँगड़ी दुनियाके लिए कितना हो सकता है—यह वह जानता था! इसलिए वह मतभेद और परस्पर पैदा होनेवाली विशिष्ट विसंवादी कटुताओंको बचाकर निकल जाता था। वह उन्हे जानता था और उसको उसे जरूरत नही थी! दुनियाकी कोई ऐसी कलुषता नही थी जिसपर उसे उलटी हो जाय—सिवाय विस्तृत सामाजिक शोषणों और उनसे उत्पन्न दम्भो और आदर्शवादके नामपर किये गये अन्ध अत्याचारों, यान्त्रिक नैतिकताओं और आध्यात्मिक महन्ताओंकी तानाशाहियोंको छोड़कर! दुनियाके मध्यवर्गीय जनोंके अनेको विषोंको चुपचाप वह पी गया था, और राह देख रहा था सिर्फ़ शान्ति-शक्तिकी! परन्तु इससे उसको एक नुकसान भी हुआ था! व्यक्ति उसके लिए महत्त्वपूर्ण नही था, व्यक्तित्व अधिक, चाहे वह व्यक्तित्व मामूली ही हो और वह भी तभी तक जब तक उसकी जिज्ञासा और उष्णताका तालाब सूख न जाय। उसकी उष्णताका दृष्टिकोण भी काफ़ी अमूर्त था क्योंकि उसके व्यक्तित्वका उद्देश्य अमूर्त था। इसलिए अपने आपमें व्यक्ति उससे यदा-कदा छूट जाता था, सिवाय

धक्का लग गया कि वह सम्हलने भी नहीं पाया। वह पुण्यात्मा विवेक शक्ति केवल काँप रही थी !

युवकके मनमें एक प्रश्न, बिजलीके नृत्यकी भाँति मुड़कर मटक-मटककर, घूमने लगा—क्यों नहीं इतने सब भूखे भिखारी जगकर, जागृत होकर, उसको डण्डे मारकर चूर कर देते हैं—क्यों उसे अब तक ज़िन्दा रहने दिया गया ?

परन्तु इसका जवाब क्या हो सकता है ?

वह हारा-सा, सड़कके किनारे-किनारे चलने लगा ! मानो उस गहरे अन्धेरेमें भी भूखी आत्माओंकी हज़ार-हज़ार आँखें उसकी बुज़दिली, पाप और कलंकको देख रही हों। स्टेशनकी ओर जानेवाली सीधी सड़क मिलते ही युवकने पटरी बदल ली।

लम्बी सीधी सड़कपर चाँदनी आधी नहीं थी क्योंकि दोनों ओर अट्टालिकाएँ नहीं थीं; केवल किनारेपर कुछ-कुछ दूरियोंसे छोटे-छोटे पेड़ लगे हुए थे। मौन, शीतल चाँदनी सफ़ेद कफ़नकी भाँति रास्तेपर बिछती हुई दो क्षितिजोंको छू रही थी। एक विस्तृत, शान्त खुलापन युवकको ढँक रहा था और उसे सिर्फ़ अपनी आवाज़ सुनाई दे रही थी—पाप, हमारा पाप, हम ढीले-ढाले, सुस्त, मध्यवर्गीय आत्म-सन्तोषियोंका घोर पाप। बंगालकी भूख हमारे चरित्र-विनाशका सबसे बड़ा सबूत। उसकी याद आते ही, जिसको भुलानेकी तीव्र चेष्टा कर रहा था, उसका हृदय काँप जाता था, और विवेक-भावना हाँफने लगती थी।

उस लम्बी सुदीर्घ श्वेत सड़कपर वह युवक एक छोटी-सी नगण्य छाया होकर चला जा रहा था।

०

पैरों-नीचे बिछा हुआ रास्ता दो पहाड़ियोंमें-से गुज़रे हुए रास्तेकी भाँति गड्ढेमें पड़ा हुआ मालूम होता था। बायीं ओरकी अट्टालिकाओंके ऊपरी भागपर चाँदनी बिछी हुई थी।

थकानसे शून्य मनमें नींदके झोंके आ रहे थे, परन्तु एक डर था पुलिसवालेका जो अगर रास्तेमें मिल जाय तो उसके सन्देहोंको शान्त करना मुश्किल है! डर इसलिए भी अधिक है कि रास्ता अन्धेरेमें ढँका हुआ है, सिर्फ़ अट्टालिकाओंपर गिरी हुई चाँदनीके कुछ-कुछ प्रत्यावर्तित प्रकाशसे रास्तेका आकार सूझ रहा है।

मनमें शून्यताकी एक और बाढ़। नींदका एक और झोंका। रास्ता दोनों ओरसे बन्द होनेके कारण शीतसे बचा हुआ है—उसमें अधिक गरमी है।

युवक कैसे तो भी चल रहा है! नींदके गरम लिहाफमें सोना चाहता है। नींदका एक और झोंका! मनमें शून्यताकी एक और बाढ़।

युवकके पैरोंमें कुछ तो भी नरम-नरम लगा—अजीब, सामान्यत अप्राप्य, मनुष्यके उष्ण शरीर-सा कोमल! उसने दो तीन कदम और आगे रखे। और उसका सन्देह निश्चयमें परिवर्तित हो गया। उसका शरीर काँप गया। उसकी बुद्धि, उसका विवेक काँप गया। वह यदि कदम नहीं रखता है तो एक ही शरीरपर—न जाने वह बच्चेका है या स्त्रीका, बूढ़ेका या जवानका—उसका सारा वज़न, एक ही पर, जा गिरे। वह क्या करे? वह सामने लगा एक किनारेकी ओर। परन्तु कहाँ—वहाँ तक आदमी सोये हुए थे। उसके शरीरकी गरम कोमलता उसके पैरोंसे चिपक गयी थी। वहीं एक पत्थर मिला, वह उसपर खड़ा हो गया, हाँफता हुआ। उसके पैर काँप रहे थे। वह आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। परन्तु अन्धेरेके उस समुद्रमें उसे कुछ नहीं दीखा। यह उसके लिए और भी बुरा हुआ। उसका पाप यों ही अन्धेरेमें छिपा रह जायेगा! उसकी विवेक-भावना सिटपिटाकर रह गयी; उसको ऐसा

उनमें घिर जाता है, और निकल नहीं पाता।

परन्तु फिर भी एक उद्धारका रास्ता है, एक स्थान है जहाँ वह निश्चित आश्रय पा सकता है। परन्तु क्या वह मिल सकेगा?

उफ़! कितनी घृणा! कितनी शर्म! इससे तो मर जाना ही अच्छा, जब कि आधारशिला ही डूब रही हो। मूल स्रोत ही सूख रहा हो। वह है, तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं! कुछ भी नहीं!

'हाय, माँ,' वह चिल्ला उठता है। परन्तु वह अपनी माँको नहीं पुकारता; उस विश्वात्मक मातृ शक्तिको पुकारता है कि वह आये और उसको बचाये। वह कर ही क्या सकता है; वह अपने आँचलसे उसे न हटाये।

'हाय! परन्तु क्या मेरा यह भी भाग्य है! तो फिर मुझे माता ही क्यों दी! वह मर....' और वह अपनी ज़बान काट लेता है, सोचता है शायद वह ग़लत हो, जो कुछ सुना है, जो कुछ सुनता आ रहा है वह भी ग़लत है। सब कुछ ग़लत हो सकता है, जैसे सब कुछ सही हो सकता है! भाग्यकी ही परीक्षा है तो फिर यही सही!

और उस लड़केको याद आ गया कि किस तरह स्कूलके लड़के उसे छेड़ते हैं, उसे तंग करते हैं, वह उनसे लड़ता है। मार खा लेता है। उसके मित्र भी उसे बेईमान समझने लगे हैं, क्योंकि वह तो ऐसी माताका सुपुत्र है। वे विषपूर्ण ताने कसते हैं। व्यंग्य-भरी मुसकान मुसकराते हैं। क्या वे जो कुछ कहते हैं, सच है? क्या काकाका और मेरी माँका—छिः छिः, थूः थूः, छिः छिः, थूः थूः!

और वह तेरह बरसका लड़का रास्ते चलते-चलते घृणा और लज्जाकी आगमें जल जाता है। काका (जो उसके काका नहीं हैं) और माँको उसने कई बार पास बैठे हुए देखा है। पर उसे शंका तब नहीं हुई। कैसे होती? पर आज वह उसको उसी तरह घृणा कर रहा

प्रश्न

एक लड़का भाग रहा है। उसके तनपर केवल एक कुर्ता है और एक धोती मैली-सी! वह गलीमें-से भाग रहा है मानो हज़ारों आदमी उसके पीछे लगे हों भाले लेकर, लाठी लेकर, बरछियाँ लेकर। वह हाँफ रहा है, मानो लड़ते हुए हार रहा हो! वह घर भागना चाहता है, आश्रयके लिए नहीं, छिपनेके लिए नहीं, पर उत्तरके लिए, एक प्रश्नके उत्तरके लिए! एक सवालके जवाबके लिए, एक सन्तोष-के लिए!

गलीमें-से दौड़ते-दौड़ते उसका पेट दुखने लगता है, अँतड़ियाँ दुखने लगती हैं, चेहरा लाल-लाल हो जाता है। वह पीछे देखता है, उसका पीछा करनेवाला कोई भी तो नहीं है! गली सुनसान पड़ी है। हलवाईकी दूकानपर लाल मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, बीड़ी बनानेवाला चुपचाप बीड़ी बनाता चला जा रहा है। और ऐसी दुपहरमें यहाँ अँधेरा है। पर ऐसा कौन था जो उसका पीछा कर रहा था, लगातार पीछा कर रहा था? वह देखता है, हज़ारों प्रश्न लाल बर्रों-से उसके हृदयके अन्धकार-मार्गपर वेगके कारण सूँ-सूँ करते हुए उसका बराबर पीछा कर रहे हैं। उसको पकड़ना चाहते हैं। मार डालना चाहते हैं।

वह दौड़ते-दौड़ते ठहर जाता है और धीरे-धीरे चलने लगता है, और मानो वे हज़ारों प्रश्न अपने करोड़ों ही डंकोंको लेकर उसके आस-पास मँड़राने लगते हैं। वे उसको व्याकुल कर देते हैं और वह निःसहाय

और वह प्रश्न अधिक कटु होकर, दाहक होकर, दुर्दम होकर उसे वाध्य करने लगा। वह अपनी प्रेममयी मातासे घृणा करे या प्रेम करे! यह प्यारी-प्यारी गोद, यह गरम-गरम स्नेह-भरा पेट जिसमें वह नौ महीने रहा—क्या उससे घृणा करनी ही पड़ेगी? पर उफ्! यदि उसको सन्तोप हो जाय कि उसकी माँ ऐसी नहीं है, कि वह पवित्र है, यदि वह स्वयं इतना कह दे कि कहनेवाले लोग ग़लत कहते हैं– हाँ वे ग़लत कहते हैं– तो उसे सन्तोष हो जायगा! वह जी जायगा! उसकी प्यारी-प्यारी माँ और वह!

एक-दो मिनट वह वैसा ही खड़ा रहा। और फिर वह उसके पास गया और उसके पेटपर सिर रख दिया। न जाने कहाँसे उसकी रुलाई आने लगी और वह रोने लग गया! लोगोंके किये हुए अपमान, व्यंग्य-का दुःख बहने लगा। पर वह तबतक ही था जबतक माँ सो रही थी। वह चाहता था कि वह सोयी ही रहे कि तबतक वह उस गोदको अपनी गोद समझ सके जिस गोदमें उसने आश्रय पाया है।

लड़केके गरम आँसुओंके स्पर्शसे सुशीला जाग उठी। देखा तो नरेन्द्र गोदमें रो रहा है। उसे आश्चर्य हुआ, स्नेह भर आया। उसको पुचकारा और पूछा, 'क्यों? स्कूलसे इतनी जल्दी कैसे आये, अभी तो ढाई भी नहीं बजा है।'

जैसे ही माँ जगी, नरेन्द्रका रोना थम गया। न जाने कहाँसे उसके हृदयमें कठोरता उठ आयी जैसे पानीमें-से शिला ऊपर उठ आयी हो और भयानक दाहक प्रश्नमयी ज्वाला उसके मनको जलाने लगी। सुशीलाने नरेन्द्रके गालोंपर हलकी थप्पड़ जमाते हुए कहा, 'बोलो, न?'

और नरेन्द्र गुम-सुम! उसके गाल न जाने किस शर्मसे लाल हो रहे थे, आँखें जल रही थीं।

नरेन्द्र माँकी गोदमें ही पड़ा था पर उसका उसे अनुभव नहीं हो रहा था।

है, जैसे जलते शरीरके मांसकी दुर्गन्ध !

परन्तु फिर भी उसे विश्वास-सा कुछ है। वह सोच रहा है, शायद ऐसा न हो।

और वह लड़का अति व्याकुल होकर अपने पैर बढ़ा लेता है। अँधेरी गलियोंमें-से होता हुआ अपने भाग्यकी परीक्षा करनेके लिए चल पड़ता है।

जब वह घरकी देहरीपर थमा तो पाया माँ सो रही है।

एक ओरपर सुशीला सोयी हुई थी। सिरके पास ही लुढ़ककर गिर पड़ी थी, कोई पुस्तक ! शान्त, सुकोमल मुख निद्रा-मग्न था। आँखें मुँदी हुई थीं जिनपर कमल वार दिये जा सकते हैं। चेहरेपर कोमलता-पूर्ण स्निग्ध माधुर्यके शान्त-निर्मल सरोवरके अचपल जलप्रसार-सा पड़ा हुआ झीना नीलम चाँदनीकी प्रसन्नताके समान दिखलाई देता था। अस्तव्यस्तताके कारण गोरा पतला पेट खुला दिखलाई देता था और वह उसी तरह पवित्र सुन्दर मालूम होता था, जैसे दो सघन श्यामल बादलोंके बीचमें प्रकाशमान चन्द्र पैर उघाड़े फैले हुए थे मुक्त, जैसे जंगल-में कभी-कभी कदलीके लाल फूल वृक्षकी मर्यादा छोड़कर टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे होते हुए हरी घासके ऊपर अपनेको ऊँचा कर देते हैं, फैला देते हैं। ऐसी यह सुशीला, गरिमा और स्त्रीसुलभ कोमलतासे पूर्ण सोयी हुई थी। उसके भालपर सौभाग्य-कुंकुम नहीं था। उसके स्थानपर गोदा हुआ छोटा नीला-सा दाग़ ज़रूर दिखलाई देता था, और वह अपने कमनीय तारुण्यमें वैधव्य लिये हुए उसी तरह दिखलाई देती थी जैसे विस्तृत रेगिस्तानमें फैली हुई ठिठुरते हुए शीतकालमें पूर्णिमाकी चाँदनी।

लड़केने माँको देखा कि यह वही पेट है, यह वही गोद है। उसके स्नेह-माधुर्यकी उष्णता कितनी स्पृहणीय है !

चाहने लगा खूब ऊँचे स्वरसे कि आसमान भी फट जाय, धरती भी भग्न हो जाय ! वह ऊँचे स्वरमें पुकारने लगा, 'माँ' मानो कोई यात्री टूटे हुए जहाज़के एक तख़्तेसे लगकर, जो कि उसके हाथसे कभी भी छूट सकता है, घनघोर लहराते हुए समुद्रमें अपनी रक्षाके लिए चिल्ला उठता है ! मरणदेशसे वह जीवनके लिए कातर-पुकार !

परन्तु यह सत्यानाश उसके हृदयके अन्दर ही हुआ और उसका निःसहाय रोदन स्वर भी उसके हृदयमें। बाहरसे वह फटी हुई आँखों-से संसारको देख रहा था। क्या यह उसके प्रश्नका जवाब था ? वह सिपिट गया, ठिठुर गया जैसे संसारमें उसे स्थान नहीं है। और एक कोनेमें मुँह ढाँपकर वह सिसकने लगा।

सुशीला अन्दर चली गयी जहाँ सामान रखा जाता है। वहाँ बैठ गयी एक डिब्बेपर। कमरेमें सब दूर शान्त अन्धकार था।

अरे, यह लड़का क्या पूछ बैठा। कौन-से पुराने घावकी अधूरी चमड़ी उसने खींच ली ? वह क्या जवाब दे जब कि वह स्वयं ही प्रश्न लायी है। यही तो है जिसका जवाब वह चाहती है दुनियासे; सबसे ?

और सुशीलाकी आँखोंके सामने एक पुरानी तसवीर खिच आयी। तब नरेन्द्रका जन्म हुआ था एक गाँवमें। एक अँधेरा कमरा जिसको सावधानीसे बन्द कर दिया गया था चारों ओरसे ताकि हवा न आ सके। सुशीला खाटपर शिथिल पड़ी थी। तब वह सोलह बरसकी थी और पास ही में शिशु नरेन्द्र और 'वे' दरवाज़ेमें सामने खड़े थे। हाँ, 'वे' जिनकी घुँघराली मूँछोंमें मुसकान समा नहीं रही थी। वे प्रसन्न थे। वे चालीस वर्ष पार कर रहे थे, तो क्या हुआ। वे बड़े प्रेमसे सुशीलासे बरतते थे। बहुत हृदयसे उन्होंने सुशीलाके स्त्रीत्वको सम्हाला। उसपर अपना आरोप नहीं होने दिया।

एक समयकी बात है कि वे बहुत खुश थे। न जाने क्यों ? वे

'माँ,' उसने कठोर, काँपते-सकुचाते हुए शब्दोंमें पूछा।

सुशीला शंकातुर हो उठी, 'क्या ?'

'सच कहोगी ?' उसने दृढ़ स्वरमें पूछा।

सुशीलाने अधिक उद्विग्न होकर कहा, 'क्या है ? बोल जल्दी।'

नरेन्द्रने धीरे-धीरे गोदमें-से अपना लाल मुँह निकाला और माँकी ओर देखा। उसका वही, कुछ उद्विग्न पर स्मितमय, सुकोमल चेहरा! मानो वह अमृत वर्षा कर रही हो। आशाका ज्वार उमड़ने लगा! तो वह मेरी ही माता रहेगी।

उसने फिर कहा, 'सच कहोगी, सचमुच !'

'हाँ रे !'

'माँ तुम पवित्र हो ? तुम पवित्र हो, न ?'

सुशीलाको कुछ समझमें नहीं आया, बोली, 'मानी ?'

नरेन्द्रने विचित्र दृष्टिसे देखा। और सुशीलाका आकलनशील मुख स्तब्ध हो गया। निर्विकार हो गया। गट्ठर हो गया। उसकी जाँघ, जिसपर नरेन्द्र पड़ा हुआ था, सुन्न पड़ गयी। उसे मालूम हो नहीं हुआ कि कोई वजनदार वस्तु नरेन्द्र नामकी उसकी गोदमें पड़ी है।

उसने नरेन्द्रको एक ओर खिसका दिया और चुपचाप आँखोंमें एक हिम्मत लेकर उठी, जैसे दीवारपर छाया उठती हुई दीखती है जिसकी अपनी कोई गति नहीं है। उसके हृदयमें एक तूफान, जीवनका एक आवेग उठ खड़ा हुआ। मानो वह वेगवान बवण्डर जिसमें धूल, कचरा, कागज, पत्ते, कंकर-काँटे सब छूट पड़ते हैं। और वह उसीके प्रवाहमें शासित होकर उठ खड़ी हुई और चली गयी अन्दर, घरके अन्दर मानो खूब धूपमें पानीके ऊपरसे उठता हुआ वाष्प-पुंज लहराकर आसमानमें खो जाता है।

नरेन्द्रकी नैया मानो इस महासागरमें डूब गयी। उसके जहाजके टुकड़े-टुकड़े हो गये उसीके सामने। वह क्रन्दनविह्वल होकर रोता

आया। मरणशय्यापर पड़े हुए पति, अँधेरे कमरेमें उपचार करनेवाली केवल एक सुशीला और नरेन्द्र ! फिर वही दृश्य, पर कितना बदला हुआ ! वही एकान्त पर कितना अलग ! और पति कह रहे हैं, 'मैंने तुम्हारे प्रति अपराध किया है, मैं चला; नरेन्द्रको सम्हालना।' और नरेन्द्रको बुलाते हैं, सुशीला नरेन्द्रको पकड़कर उनके मुँहके सामने रख देती है। वे चूमनेकी कोशिश करते हैं और उनकी आँखोंसे आँसू झर पड़ते हैं और फिर वे सुशीलाको कहते हैं 'मैंने तुम्हारा अपराध किया है।' और सुशीला रोती हुई 'नहीं-नहीं' कहती है, समझानेकी कोशिश करती है और वे कहते हैं 'नरेन्द्रको सम्हालना।' इतनेमें मामा आ जाते हैं। सुशीला हट जाती है।

अन्तिम क्षण ! पतिके अन्तिम श्वासकी घर्राहट ! और सुशीला-का हृदयभग्न, फिर ऊँचा रोदन स्वर ! मानो अब वह आसमानको फाड़ देगा !

वे कितने अच्छे थे ! कितने स्नेहमय ! कितने गम्भीर ! कितने कोमल !

और अपवित्रा सुशीला फिरसे दहाड़ मारकर रो पड़ती है। क्या उनको कभी यह मालूम था कि सुशीलाको आगे कितना कष्ट सहना पड़ेगा।

यदि आज 'वे' होते, चाहे जैसे भी हो, तो क्या इतना दुःख होता। कितनी सुरक्षित होती वह ! मजाल होती किसीकी कोई कुछ कह ले। उन्हीं तीस रुपयोंमें वह अपनी ग़रीबीका सुख भोगती।

परन्तु विधि किसके इच्छानुसार चलता है ? जब सुख बदा नहीं है, तो कहाँसे मिलेगा !

घरके ठीकरे, कुछ सोना-चाँदीकी वस्तुएँ बेंच-बाचकर···और उसके जीवनमें—विधवाके जीवनमें अचानक उसका आना—एकका आना !

और रोती हुई सुशीलाके सामने एक दृश्य आता है ! दुपहर !

जाकर रहना चाहिए, जिससे कि उन्हें दिलासा हो और उनकी जिन्दगी आरामसे कटने लगे।

वह कितनी सुखमय पवित्र भूमि थी जिसपर उन दोनोंका स्नेह आ टिका था। वे दोनों आमने-सामने बैठ जाते—बीचमें चायका ट्रे और दोनों बच्चे !

वे कब एक दूसरेकी बाँहोंमें आ गये इसका उनको स्वयं पता नहीं चला। भले ही वे अलग-अलग रहते हों, पर वे एक दूसरेके सुख-दुःखमें कितने अधिक साथी थे।

और अपवित्रा सुशीला सोच रही है अपने अँधेरे कमरेमें कि उन्होंने मेरे जीवनकी दोपहरमें अपनी सहानुभूतिका गीलापन दिया। फिर प्रेम दिया। मैं भीग उठी, उनसे प्रेम किया और न जाने कब तन भी सौंप दिया ! उन दोनोंका घर एक हो गया।

और एक रात !

दोनों बच्चे सो रहे थे। वह उनके लिए जाग रही थी। उसकी आँखें नहीं लगती थीं। वे आ गये अपने सारे तारुण्यमें मस्त।

और जब वह उनके विह्वल आलिंगनमें बिंध गयी तो अचानक सुशीलाको अपने पतिदेवका खयाल आया। उनका स्नेहाकुल मुख कह रहा है, 'तुमको सलोना युवक चाहिए था !'

उस वक़्त सुशीलाने कहा था, 'नहीं' 'नहीं'।

पर आज वह कह रही थी, 'हाँ', 'हाँ'। और वह अधिक गाढ़ होकर उनपर छा गयी। पतिका खयाल उसे फिर भी था।

आज अपवित्रा सुशीला आँखोंमें आँसू लेकर और हृदयमें ज्वार लेकर सोच रही है कि उसे अपने जीवनमें कहीं भी तो विसंगति मालूम नहीं हो रही है। फिर उसके पतिको भी विसंगति कैसे मालूम होती। एक सिरा 'पति' है, दूसरा सिरा 'काका' ! पर इन दोनों सिरोंमें खोजते हुए भी विरोध नहीं मिल रहा है। वह उस सिरेसे इस सिरे तक दौड़ती

और मैं एक दिन पाता हूँ कि नरेन्द्र कुमार एक कलाकार हो गया है। मैं एक गाँवमें मास्टरी करता हूँ पन्द्रह रुपयेकी, सुशीला मर गयी है। पर मैं यहीं दुनियाके आसमानमें एक कृपाणकी भाँति तेजस्वी उल्का-का प्रकाश छाया हुआ देख रहा हूँ जिसकी पूजा सब लोग कर रहे हैं। मुझे बादमें मालूम हुआ कि यह नरेन्द्र कुमारका प्रकाश है। सुशीलाकी जन्मभूमि, हमारा गाँव, धन्य है!

और सुशीलाके हृदयमें कटुता, चिन्ता, विषाद भर आता है।

हम दोनों साथ-साथ, पास-पास बैठते हैं, पर अबतक तो उसने कभी भी ऐसा नहीं किया। उसने तो उसे स्वाभाविक मान लिया। उसकी सारी सहज पवित्रताकी सरलताको उसने स्वीकार कर लिया।

फिर यह कैसा प्रश्न ? कैसी महान् विडम्बना है ! और मेरे प्रश्नका उत्तर कौन दे सकता है। है हिम्मत किसीमें····?

इतनेमें नरेन्द्रके साथ बहुत कुछ हो गया। काका चले आये। वे पढ़ते हुए बैठे रहे। नरेन्द्र घृणासे जल रहा था। वे कुछ पूछते तो उन्हें वह काट खाता। यही तो है वह पुरुप जिसने उससे, उसकी माता-को छीन लिया।

भाग्य था कि काका वहाँसे चले गये। नरेन्द्र सोच रहा था कि वह उन्हें मार डालेगा। पर वह चले गये तो आत्महत्या करनेकी सोचने लगा। वह फ़ौरन जाकर अपनी जान दे देगा। उफ्, तीन घण्टे कितने घोर हैं।

माँ न जाने किस दुःखसे शिथिल-सी चली आयी। उसका चेहरा तप्त था, हृदय जल रहा था। पर उसमें आँसुओंकी बाढ़ आ रही थी।

नरेन्द्र मुँह ढाँपे बैठा हुआ था।

सुशीला उसके पास चली गयी। एकदम उसको अपनी गोदमें ले लिया। उसकी आँखोंसे जल-धारा बरसने लगी और वह ज़ोर-ज़ोर-से चुम्बन लेने लगी। नरेन्द्रने देखा जैसे उसकी माँ उसे फिर मिल गयी हो; पर वह खोयी ही कहाँ थी ? फिर भी वह कुण्ठित था, अकड़ा ही रहा।

सुशीला अतिलीन हो बोली, 'तुम मुझे क्या समझते हो नरेन्द्र ?'

नरेन्द्र सोचता रहा। उसकी ज़बानपर आ गया, 'पवित्र; पर

उसने कण्डे तौलकर आगे रख दिये। एक अत्यन्त कृष्ण वर्ण नाटा मजदूर उन सबको बाँधकर उठाने लगा।

बूढ़ा अविश्वास-भरी उत्सुक आँखोसे देखता रहा, बटुएमें-से निकलते हुए रुपयोंको वह दुःखके साथ सोचता रहा, 'शायद बहुत कम दे दें, शायद इन्हें नियम मालूम हो और मेरी आशाओंपर पानी फिर जाय।'

परन्तु ऐसा कुछ न हुआ। मजदूर लकड़ी-कण्डोंका गट्ठा बाँधकर श्मशानकी ओर जाने लगा। बटुएको टटोला जा रहा था, लेकिन रुपये न होनेके कारण दस रुपयेका नोट फेंक दिया गया। वे दोनों साथी श्मशानकी ओर अन्धेरेमें लुप्त हो गये।

बूढ़ेके हृदयमे हर्षकी बाढ़ आयी। अबतक उसका हृदय सुखसे दुःख तक, दुःखसे सुख तक, झूल रहा था। अब वह गया और नोटको हाथके पंजेमें खूब दबाये हुए खड़ा रहा विस्मृत।

किन्तु दूसरा विचार हर्षकी बाढ़को रोकता हुआ उसके हृदयको छीलता हुआ दिमागमे चक्कर काटने लगा। सोचने लगा 'शायद लौटते वक्त वे बाकी रुपये माँगें।' इस समय उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी।

सर्वत्र सन्नाटा छा रहा था। थोड़े ही समयमे नदीके किनारे अन्धकारका पेट फाड़ती हुई चिताकी लाल-लाल ज्वाला जल उठी।

बूढ़ा उसी ओर देखता रहा। हृदय दुख रहा था, लेकिन मन सुन्न पड़ गया था, 'कहीं वे लौटकर रुपये न ले जायँ।' यही विचार उसके मनकी रिक्ततामे चक्कर काटता रहा।

घरमे चूल्हेके पास उसकी पुत्र-वधू रोटी कर रही थी। लकड़ीकी लाल-लाल ज्वालाका प्रकाश निर्दोष आयत लोचनोंवाले मुखपर नाच रहा था। सन्तोषके सुखसे प्रसन्न उसका वदन तारुण्यके स्वाभाविक सौन्दर्यको अधिक पवित्र कर रहा था। पास ही उसका दो बरसका

एक युवक बिलखता हुआ चला आ रहा था। अरथीके ऊपरसे पैसे लुटाये जा रहे थे। भंगी उनको बीन रहे थे।

बूढ़ा देखता रहा जुलूसको—लोलुप आँखोंसे उन लुटाये हुए पैसों, इकन्नियों-दुअन्नियोंकी ओर। उसके प्राण अदृश्य रूपसे भाग रहे थे।

जुलूसके दो आदमी उसके आँगनमें ठहर गये। वे स्थिर खड़े थे विषाद-परिप्लावित। उनका हृदय अत्यन्त भारी और आर्द्र था।

रात हो चुकी थी। आँगनमें टिमटिमाता लालटेन अन्धकारमें लिपटी चीज़ोंको अधिक भयानक कर रहा था।

उनको देखकर बूढ़ा खूब खुश हो गया और फिर भी उसने जान-बूझकर प्रश्न-भरी आँखोंसे उनकी ओर देखा। पर वे चुप थे, निस्पन्द थे।

बूढ़ेने पूछा, 'कितनी लकड़ी दूँ?' यह कहते हुए एक विचार दिमाग़से गुज़र गया। विचार आया, पैसे अधिक वसूल हो सकते हैं। विचारके साथ-ही-साथ आनन्दका ज्वार आया, लेकिन एक दूसरा भी विचार आया, 'भाव तो यहाँ समान होता है, ठहरा हुआ होता है।' इस विचारसे उसके हृदयको धक्का लगा। एक संघर्ष हुआ, कड़ुआ, कठोर।

उसने उनसे कठोरतासे पूछा, 'बोलो न, कितने मन?'

तब उनमें-से एकने कहा, 'आठ मन!'

'आठ रुपये होंगे!' वह आप ही आप कह गया। उन्होंने उदासी-भरे स्वरमें उत्तर दिया, 'दो।'

और बूढ़ा हृदयके गहरे स्तरोंमें इकट्ठा हो रही हर्षकी वेगवान लहरोंको दबाता हुआ लकड़ियाँ निकालकर तौलने लगा। उसने उन्हें बुरी तरहसे ठग लिया था।

तब उनमें-से एक बोल उठा, 'कण्डे भी चाहिए।' बूढ़ेने लकड़ी तौलकर अलग रख दी और कहा, 'दाम आठ आने होंगे।'

'हा: हा. हा: हा: ।'

फिर सुनाई दिया । वह वहांसे उठी और बूढ़ेके कमरेमें गयी । वह खिड़कीके पास खड़ा था । हंसनेके आवेगसे उसकी छोटी आंखें आस-पासके एकत्र चमड़ेमें अदृश्य हो गयी थी ।

अपनी बहूको विस्मित, चमत्कृत और भयभीत देखकर बूढ़ेको और भी हंसी आ गयी । आखिर अपनेको शान्त करनेकी चेष्टामें हांफते हुए बूढ़ा अधीरतासे कहने लगा—

'बैठ, बैठ ! नीचे बैठ !'

विस्मित वह बैठ गयी दरवाजेपर ।

बूढ़ा भयानक अधीरतासे कुर्तेके नीचे बण्डीकी जेबमें रखे हुए दस रुपयेके नोटको निकाल रहा था ।

हाथसे कुचले हुए नोटको लेकर हर्षाकुल बूढ़ा कहने लगा, 'देख, मोहन (उस स्त्रीका पति) दस रुपये दस दिनमें कमाता है । मैं एक घण्टेमें कमाता हूं ।'

और उसने वह नोट बहूके आगे फेंक दिया । वह लड़की नोटको पाकर खुश हो गयी । उसका सुन्दर चेहरा और भी सुन्दर दिखाई देने लगा ।

बूढ़ा, इस समय बिलकुल निर्दोष बच्चेके समान सब कुछ कह गया—सम्पूर्ण विस्तारके साथ । उसके हृदयमें तब जीतका उत्साह, जीवनका आनन्द और प्यारे बच्चोंके लिए किये प्रयत्नकी गहराई सब एकाकार होकर उसे पागल बना रहे थे । वह आवेशमें आतुर हो रहा था । हर्ष उसे उद्वेलित कर रहा था ।

किन्तु उसकी बहूने, जिसकी सहानुभूति कभी भी उस व्यक्तिके प्रति नहीं रही, उसके कार्योंकी असलियत समझ ली । उसकी आलोचक बुद्धिने बुड्ढेके व्यवहारके प्रति विद्रोह किया और उसकी सम्पूर्ण सहानुभूति श्मशान-यात्रियोंके प्रति हो गयी । बहूने प्रकृतिका मंगल-

बच्चा अपने लकड़ीके घोड़ेको पुचकार रहा था।

बाहर अँधेरा था। वीरान विकराल भयानकता फैली हुई थी किन्तु घरके अन्दर मानवका स्पर्श था। कमरोंमें वस्तुओंको रखनेकी व्यवस्थामें नारीका सुकुमार हाथ स्पष्ट दिखलायी देता था। भगवान् श्रीकृष्णकी तसवीरके पास नीरांजन दिव्य मन्द स्मितसे घरमें कोमल आलोक फैला रही थी। घरमें एक ही आदमीके सन्तोष और नित्य प्रसन्नतामें नहानेसे सर्वत्र सुख फैल जाता है जो अलौलिकताकी सीमाको स्पर्श कर लेता है।

किन्तु उसीके सामने उसका वृद्ध ससुर बैठा हुआ था अपनी छोटी-छोटी बातोंमें उलझा-सा! इस समय उसके मनमें वही पुराना विचार, 'शायद लौटते वक़्त वे बाक़ी रुपये माँगे' उसके हृदयको पीड़ासे उद्वेलित कर रहा था। उसका सम्पूर्ण ध्यान इस ओर लगा था कि वे आदमी जल्दीसे जल्दी यहाँसे गुजर जायँ और मैं उनको जाते हुए देख लूं। वह प्रतीक्षामें आतुर, चिन्तित मन, पीड़ाके भारसे कुचला जा रहा था।

बूढ़ेके खाना खा लेनेके दो घण्टे बाद, एक-एक करके वे श्मशान यात्री जाने लगे। अन्धकारके कालेपनमें आच्छादित उनके शरीर आँगनमें टँगे हुए लालटेनकी क्षीण ज्योतिमें छायाके समान चलते हुए दिख रहे थे। जब उस वृद्धने सब ओर देखकर निश्चय कर लिया कि अब कोई नहीं बचा है तो उसके हृदयके गहरे स्तरोंके नीचे अटका हुआ हर्षका वेगवान् फुहारा सब प्रकारके बन्धन तोड़ता हुआ बेरोक हास्यसे गूँज उठा।

'हाः हाः हाः हाः हाः हाः हाः हाः।'

वृद्धको अकस्मात् इतने ज़ोरसे हँसते देखकर अपने बच्चेको आगे लेकर निश्चिन्त सोयी पुत्रवधू घबराकर जाग उठी। बच्चा रोने लगा। भगवान् श्रीकृष्णके सामने रखी हुई नीरांजनकी ज्योति बुझ गयी।

मनके सबसे कमज़ोर स्थानपर उस लड़कीका आघात था। उसकी प्रतिक्रिया कितनी भयकर होती है!

उसकी आवाज़ काँप रही थी, उसका शरीर काँप रहा था। उसका दम घुट रहा था। उसका हृदय अन्दर-ही-अन्दर धँसने लगा, कलेजा धड़कने लगा। और आह निकलने लगी। उसका सिर गरम हो गया था।

वह दूसरे कमरेमें चला गया जहाँ उसका बिस्तर बिछा था। दरवाज़ा अन्दरसे बन्द कर लिया और सिरपर हाथ रखकर वह लेट गया। भावनाएँ उन्मत्त होकर उसके हृदयमें ताण्डव नृत्य कर रही थी।

बूढ़ेके प्रति घृणासे और आगे उसपर क्या बीतेगा इस डरसे भरी हुई बहू अपने कमरेमें चली गयी।

वह कमरा सूना रह गया जिसकी रिक्ततामें हवाके झोंकोंसे अनाथ नोट चारों ओर नाचता रहा।

बाहर घोर अन्धकार था। घरके सन्नाटेमें धुएँकी भाँति वह भारी-भारी हो छा गया था। बूढ़ेके हृदयपर मानो कितने ही मन वज़न-दार पत्थर रख दिया गया हो। उसका हृदय इसी अन्धकारसे कुचला जा रहा था।

उसे भयकर क्रोध आ रहा था। इसी हलचलके विकट दशासे उसे रोना आ गया। घनघोर घटाको इस आत्मसात् करनेवाली तूफ़ान-मालिकासे घबराकर उसका शिशु-मन अपने मृत माता-पिताकी गोद खोजने लगा।

उसे मां-बापकी याद आने लगी और वह तकियेपर सिर रखकर फूट-फूटकर रोया। आँसुओंका प्रवाह अनवरत तथा अबाध था। जीवनकी कण्टकाकीर्णतासे प्रपीड़ित होकर वह उस अतीत दिनकी ओर देखने लगा। अपनी स्वप्निल आँखोंने जब उसकी माता मरणोन्मुख

मय रूप ही अबतक देखा था। इसलिए उसका हृदय मानवी संवेदनाओंसे ओतप्रोत था।

वृद्ध, जो उस तरुण और समझदार लड़कीसे प्रशंसा कराना चाहता था, उसके चेहरेपर उठनेवाले प्रत्येक भावना-विकारके प्रति संवेदनशील हो गया।

अन्दरसे भयभीत-सा होकर वह पूछने लगा, अत्यन्त भोलेपनसे, 'क्या तुम खुश नहीं हो?'

इस प्रश्नकी स्पष्ट मूर्खतापर लड़कीको रोना आ गया। किन्तु वह कुछ भी न बोली।

वृद्ध आकुल होकर पास आ गया और वत्सलतासे उसके आँसू पोंछने लगा।

पर उस बालाको यह सब दम्भ मालूम हुआ। वह अन्दरसे कुढ़ गयी और अपनी अंग-भंगिमासे बतला ही दिया कि उसे वृद्धकी बातसे एकदम घृणा है। वह कहना नहीं चाहती थी फिर भी यह वाक्य उसके मुँहसे निकल गया 'तुम्हें बुढ़ापेमें भी लालच न छूटा!' यह कहकर उसने जीभ काट ली, डरके मारे।

उस लड़कीकी घृणा वृद्धके हृदयके गहरे कोनेसे जा टकरायी। हर्षोल्लास भाग गया। हँसी उड़ गयी। क्रोध धुएँके समान उठने लगा। उसका दम घुटने लगा, फिर भी काँपती हुई आवाजमें वह कहने लगा—

'मैं लालची हूँ, बदमाश हूँ और तू तो बहुत ही अच्छी है''''तुझको भिखमंगे माँ-बापसे छुड़ाकर यहाँ रखा''''और तेरे ये मिज़ाज! अबतक जो कुछ कमाया, क्या मैंने अपने लिए कमाया? क्या मैंने खाया या मैंने पहना?''''ये रुपये क्या मैं खा लूँगा''''ज़बान कतरनी सरीखी चलती है।'

क्रोधकी वह सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रिया थी। बूढ़ेके

पीड़ा देने लगा, 'तुम बुढ़ापेमें भी पैसोंके लिए झूठ वोले !' यह वाक्य उसे सच मालूम हुआ, अत्यन्त सत्य !

इतनेमें उसे अपनी चिता दिखाई दी। उसकी निर्धूम ज्वाला उठ रही है। वह उसके मनकी आँखोंके सामने धू-धू करके जलने लगी है।

उसको लगा मानो उसके पुराने सारे पाप एक-एक करके जल रहे हों। *और उसके अन्दरका सात्विक हृदय सोनेके समान शुद्ध होकर* निखर रहा हो।

अपनी भावी चिताकी लपलपाती ज्वालाएँ उसको अत्यन्त दिव्य मालूम हुईं। उनकी अरुणिमा किसी तपस्विनीके हृदयकी उदारताके समान मालूम हुई। ज्वालाओंकी गरमी अत्यन्त शीतल-सुगन्धित मालूम हुई।

तभी उसने देखा, 'एक दिव्य नारी-छाया, अरुण-वसना, स्मितमुखी, धीरेसे उसकी सुनहली शुद्ध आत्माको उठाकर लिये जा रही है, नीलाभ आकाशके अनन्त विस्तारमें। और वह चला जा रहा है……'

बूढ़ेका चेहरा आनन्दोन्मादसे भर गया। आँखें धुंधली हो गयीं। उसके हृदयमें एक नवीन अलौकिक जोश लहरें मार रहा था। उसके सामनेकी सब वस्तुएँ रंगीन और धुंधली मालूम दीं। उसके गाल भावनातिरेकसे कम्पायमान हो रहे थे।

वह उठा और जहाँ उसकी पुत्र-वधू सोयी थी, वहाँ आकर खड़ा हो गया। वह बाला चिन्ता-रहित और स्वस्थ तथा शान्त सोयी थी।

बूढ़ेका हृदय एकदम विस्तृत हो गया। वह मानो अपने बच्चेको लेकर सोयी हुई अपनी पुत्र-वधूमें मिला जा रहा हो—उसके द्वारा संसारमें लीन हो रहा हो।

मानो वह निकटके जगत्से कुछ सचेत हुआ। पुत्र-वधूको आशीर्वाद

होकर निश्चेष्ट पड़ी थी और आखिरी बार पुकार रही थी, 'बेटा आ-आ !' पिता उद्विग्न, आकुल, आतुर, आशा-निराशाके झंझावातसे क्लान्त-कातर पास बैठा था। वह दृश्य ! आह ! कितना शोकपूर्ण था।

तब वह निरा बालक था। उसको अपनी स्थिति ज्ञात नहीं थी।

पिताने कहा था, 'बेटा पानी दे दो।'

माँने पानी पीनेके लिए मुँह खोला और आँखें खोलीं तो वे गीली निकलीं। तब उसे इसके रहस्यका ज्ञान न था।

वह खेलने भाग गया था। हाय ! बादमें सुना 'माँ मर गयी।' पिता रो रहे थे। पर उसके शिशु मनको कोई खेद न था। लेकिन आज ! माँ ! ओ माँ ! उसे सम्हाल ! अपने लाड़लेको सम्हाल ! जगत् उसे मारता है तेरे आसरेके सिवा उसे कौन-सा आसरा है !

यह सोचते-सोचते बूढ़ा रोने लगा। माँके मरनेके बाद उसका दुःख-पूर्ण जीवन शुरू होता था।

तीन बरस बाद वह सोलह वर्षका था। तब पिता भी मरणासन्न होकर उसी कमरेमें पड़े थे। उसने पूछा, 'पिताजी, डॉक्टर साहबको ले आऊँ ?' पिताने क्षीण आवाज़से उत्तर दिया, 'बेटा घबराओ मत, मैं जल्दी ही अच्छा हो जाऊँगा।'

वे दिन बहुत खराब थे। रात और दिन सूने-सूने हो रहे थे। क्षण भारी हो रहे थे।

चार दिन बाद वे मर गये। उनका निर्जीव शरीर ! पुत्रकी निःसहाय कातर बेक़रारी ! अरथी ! उसका बिलखते हुए निकलना ! वही श्मशान ! चिताकी लाल-लाल ज्वाला !....उतनी ही लाल जितनी उसने आज रातको देखी थी, जिस रातको उसने धोखा दिया था !

पुरानी स्मृतियोंके अपनी आँखोंके आगे सरकते-सरकते बूढ़ा फिर आजकी बात सोचने लगा।

मैं सोचता था कि मेरी आवाज़ बगीचेमें दूर-दूर तक जायेगी। लेकिन लोग अपनेमें डूबे हुए थे। सिर्फ़ सिंग साहब हींगकी झाड़ीका एक पत्ता मुझे लाकर दे रहा था।

मैंने कहा, 'सिंग साहब, तुम्हारा हेमिंग्वे मर गया !'

वह स्तब्ध हो गया। वह कुछ नहीं कह सका। उसने सिर्फ़ इतना ही पूछा, 'कहाँ पढ़ा ? कब मरा ?'

मैंने उसे हेमिंग्वेकी मृत्युकी पूरी परिस्थिति समझायी। समझाते-समझाते मुझे भी दुःख होने लगा। मैंने कहा, 'यह जान-बूझकर उसने किया।'

जगतसिंहने, जिसे हम सिंग साहब कहते थे, पूछा, 'बन्दूक़ उसने खुद अपने-आपपर चला ली ?'

मैंने कहा, 'नहीं, वह चल गयी और फट पड़ी। मृत्यु आकस्मिक हुई।'

जगतसिंहने कहा, 'अजीब बात है।'

मैं आगे चलने लगा। मेरे मुँहसे बात झरने लगी—हेमिंग्वे कई दिनोंसे चुप और उदास था, सम्भव है, अपनी आत्महत्याके बारेमें सोचता रहा हो, यद्यपि उसकी मृत्यु हुई आकस्मिक कारणोंसे ही।

मेरे सामने एक लेखक-कलाकारकी संवेदनाओंके, उसके जीवनके स्वकल्पित चित्र तैरते जा रहे थे। इतनेमें मैंने देखा कि बगीचेके अहाते-के पश्चिमी छोरपर खड़े हुए टूटे फव्वारेके पासवाली क्यारीके पाससे राव साहब गुज़र रहे हैं। उनकी सफ़ेद धोती शरद्के आतपमें झलमला रही है''''कि इतनेमें वहाँसे घबरायी हुई लेकिन संयमित आवाज़ आती है, 'साँप, साँप !'

मैं और जगतसिंह ठिठक जाते हैं। मुझे लगता है कि जैसे अपशकुन हुआ हो। सब लोग एक उत्तेजनामें उधर निकल पड़ते हैं। आमके पेड़ोंके जमघटमें खड़े एक बूढ़े युकलिप्टसके पेड़की ओटमें हाथ-भरका

विपात्र

लम्बे-लम्बे पत्तोंवाली घनी बड़ी इलायचीकी झाड़ीके पास जब हम खड़े हो गये तो पीछेसे हँसीका ठहाका सुनाई दिया। हमने परवाह नहीं की, यद्यपि उस हँसीमें एक हलका उपहास भी था। हम बड़ी इलायची-के सफ़ेद-पीले, कुछ लम्बे पँखुरियोंवाले फूलोंको मुग्ध होकर देखते रहे। मैंने एक पँखुरी तोड़ी और मुँहमें डाल ली। उसमें बड़ी इलायचीका स्वाद था। मैं ख़ुश हो गया। बड़ी इलायचीकी झाड़ीकी पाँतमें हींगकी घनी-हरी झाड़ी भी थी और उसके आगे, उसी पाँतमें, पारिजात खिल रहा था। मेरा साथी, बड़ी ही गम्भीरतासे प्रत्येक पेड़के बौटे निकाल नाम समझाता जा रहा था। लेकिन, मेरा दिमाग़ अपनी मस्तीमें कहीं और भटक रहा था।

सभी तरफ़ हरियाला अँधेरा और हरियाला उजाला छाया हुआ था और बीच-बीचमें सुनहली चादरें बिछी हुई थीं। अजीब लहरें मेरे मनमें दौड़ रही थीं।

मैं अपने साथीको पीछे छोड़ते हुए, एक क्यारी पार कर, कटहलके पेड़की छायाके नीचे आ गया और मुग्ध भावसे उसके उभरे रेशेवाले पत्तोंपर हाथ फेरने लगा।

उधर कुछ लोग, सीधे-सीधे ऊँचे-उठे बूढ़े छरहरे बादामके पेड़के नीचे गिरे हुए कच्चे बादामोंको हाथसे उठा-उठाकर टटोलते जा रहे थे। मैंने उनकी ओर देखा और मुँह फेर लिया। जेबमें-से दियासलाई

को अपने लिए मूल्यहीन समझ उन्हें अपने टेवलके दूसरी ओर फेंक देते। यह नहीं कि उन्हें अमरीकासे किसी भी प्रकारकी कोई दुश्मनी थी, वरन् यह कि वे इस वातको माननेके लिए तैयार नहीं थे कि 'नेसफ़ील्ड ग्रामर' और 'मेयर ऑव कैस्टरब्रिज' से आगे कोई और चीज़ भी हो सकती हैं।

ज्ञान उनके लेखे जव मोक्षका साधन नहीं है, मुक्तिका सोपान नहीं है तो निःसन्देह वह किसी भौतिक लक्ष्यकी पूर्तिका एक साधन है—उसी प्रकार जैसे लकड़ीसे कुत्तेको मार भगाया जा सकता है, या सँड़सीसे जलती सिगड़ीपर-से तवा नीचे उतारा जा सकता है। संक्षेपमें, जो व्यक्ति ज्ञानकी उपलब्धिका सौभाग्य प्राप्त करके भी यदि अपने जीवनमें असफल रहा आया, अर्थात् कीर्ति, प्रतिष्ठा और ऊँचा पद न प्राप्त कर सका तो उस व्यक्तिको सिरफिरा या दिमाग़ी फ़ितूरवाला नहीं तो और क्या कहा जायेगा। अधिकसे अधिक वह तिरस्करणीय और कमसे कम वह दयनीय है—उपेक्षणीय भले ही न हो।

राव साहव इस वक़्त जिस सीढ़ीपर हैं उसकी अगली सीढ़ीका नक़्शा वरावर ध्यानमें रखते थे। उस अगली सीढ़ीपर चढ़नेकी तरकीवें भी जानते थे और फिर अपना मुंह हमेशा उसी तरफ़ रखते। वह सिर्फ़ मौजूदा ज़रूरतके लायक़ पढ़ लिया करते। सामाजिक वार्तालापमें पिछड़ जानेके भयपर विजय प्राप्त करनेके लिए, वे दो-चार अख़बार भी रोज़ देख लिया करते।

वे चुप रहते, खूब मेहनत करते। महाकाव्यके धीरोदात्त नायककी भाँति ही वे धर्म, बुद्धि, कर्त्तव्यपरायणता और दयाशीलताकी सुशिल्पित मूर्ति थे। लेकिन, काम पड़नेपर, अवसरके अनुसार पवित्र नियमोंसे इधर-उधर हटकर अपना मतलव भी साध लेते।

इसलिए उनके लेखे जगत मूर्ख था। वह खूब पढ़ता। अकेले अँधेरे-में पड़ा रहता। वाहर कम निकलता। वाहरकी दुनियामें वह अजनवी-

सच है कि नाग यहाँकी रखवाली करता है ?'

'कहते हैं कि इस बगीचेमें कहीं धन गड़ा हुआ है और आजके मालिकके परदादेकी आत्मा नाग बनकर उस धनकी रखवाली करने यहाँ घूमा करती है। इसलिए, मालीने उसे मारा नहीं।'

जगतने कहा, 'अजीव अन्धविश्वास है!'

इस बीच हम गुलावकी फूलों-लदी वेलसे छाये हुए कुंज-द्वारसे निकलकर, लुकाटके पेड़के पास आ गये। उधर, अमरकका घना पेड़ खड़ा हुआ था। बगीचा सचमुच महक रहा था। फूलोंसे लदा था। बहारमें आया था। एक आमके नीचे डायरेक्टर साहबके आस-पास बहुत-से लोग खड़े हुए थे जिनके सिरपर आमकी डालियाँ छाया कर रही थीं। सब ओर रोमाण्टिक वातावरण छाया हुआ था।

मैंने अपने-आपसे कहा, 'क्या फूल-पेड़ महक रहे हैं! बगीचा लहक उठा है।'

बीच ही में राव साहब बोल पड़े, 'कुत्ते मारकर डाले हैं पेड़ोंकी जड़ोंमें।'

मैं विस्मित हो उठा। जगत स्तब्ध हो गया।

मेरे मुँहसे सिर्फ़ इतना फूट पड़ा, 'ऐसा!'

लेकिन, जगतने कहा, 'नागको छोड़ देते हो और कुत्तोंको मार डालते हो।'

राव साहबने हँसते हुए कहा, 'कुत्ते 'जनता' हैं। नाग देवता है, अधिकारी है।' यह कहकर राव साहबने मुझे देखा। लेकिन, मेरा मुँह पीला पड़ चुका था। असलमें उस आशयके मेरे शब्द थे जिसका प्रयोग किसी दिन मैंने किया था। उनका सन्दर्भ जगत नहीं समझ सका।

मैं तेज़ीसे क़दम बढ़ाकर फाटककी ओर जाने लगा। मैंने जगतसे 'एक बार मुझे 'बॉस' पर ग़ुस्सा आ गया था। शायद तुम भी

…ास जाते हैं। वहाँसे ट्रेन पकड़कर वे कोडाईकानाल पहुँच जाते हैं। अहाता, दरवाजा, घर कमरा, साँवला सूनापन ! दो आकृतियाँ। माता-पिता। दोनों आगन्तुक आँसू बरसाते हुए उनके पैर छूते हैं … स्वप्न टूट जाता है और जगतके मनमें अचानक सवाल पैदा होता है कि इरीना उसके माता-पिताके पैर छुएगी कि नहीं।

राव साहब इन सब बातोंको नहीं जानते हैं। अगर जगत अपनी विशाल ज्ञान-राशिके द्वारा कोई ठोस और बड़ी चीज हासिल करना जिससे उसे चारों ओर सम्मान और ऊँची स्थिति तथा धन प्राप्त होता तो वे निःसन्देह उसकी सफलतापर श्रद्धांजलि चढ़ाते। लेकिन, जिन्दगीमें ऊँची सीढ़ी प्राप्त न करनेके कारण, उससे जुड़े हुए दूसरे कारणोंसे मनुष्यकी जो एक दुर्दशाग्रस्त स्थिति प्राप्त होती है, वह उसकी कमजोर नस है। सभ्यता और शीलके कारण अपने व्यक्तित्व-के झूठे प्रतिबिम्ब गिराते हुए लोग उसे दुर्दशाग्रस्त स्थितिमें सहानु-भूति प्रदर्शित करते हैं। राव साहब छोटे पदसे बड़े पदपर पहुँच चुके थे। किन्तु उनकी प्रगतिमें निर्णायक योग उनकी प्रतिभाका नहीं था वरन् उन संयोगोंका था जो परिस्थितियोंके बनने और बढ़ते हुए ताने-बानोंके अनुकूल परिणामके रूपमें प्रस्तुत हो जाते हैं।

मेरे व्यक्तिगत इतिहासका यह एक सबसे विचित्र रहस्य है कि मुझे अपने जीवनमें ऐसे ही लोग प्राप्त हुए जो किसी-न-किसी प्रकारसे आहत थे। इन आहतोंको पहचाननेमें मुझे भी तकलीफ होती। आहतोंका भी अपना एक अहंकार होता है जिसे मैं खूब पहचानता था और वह अहंकार बहुत और हठ होता है। वह उस मुण्ड-हीन कबन्धके समान है, जो पराजयके बावजूद रणक्षेत्रमें खूनके फव्वारे छोड़ते हुए लड़ता रहता है। उसमें मात्र आवेग और गति होती है जो कि सिर न होनेके सबब शून्यमें चारों ओर तलवार चलाता रहता है। क्या जगत वैसा है? मेरे खयालसे वह ऐसा हो भी सकता है,

हीं रहते। अगर वह सचमुच अमरीकासे ऊँची डिग्री लेकर लौट आता तो सम्भव है लोग उसके रोबमें रहते; लेकिन वह तो जा ही नहीं पा रहा था। उसके सामने अमरीका जानेकी थाली भी परसी गयी थी, लेकिन अपने माता-पिता (जो धनी तो थे, किन्तु थे बहुत अव्यावहारिक) के कहनेसे और (उसका दुर्भाग्यपूर्ण विवाह भी हो चुका था) अन्य कई झमेलोंके आड़े आनेसे वह नहीं जा सका था। वह ग़रीब नहीं था। ऑक्सफ़ोर्ड या हार्वर्ड ख़ुद अपने पैसोंसे जा सकता था। वह वहाँ जाने और बस जानेकी इच्छा करता था; किन्तु उस इच्छाकी पूर्तिके पूर्व घरके झमेलोंसे निपटनेकी कला उसके पास नहीं थी। असलमें, वह बच्चा था, ज़िन्दगीका उसके पास तजुर्बा नहीं था। दुर्भाग्यकी बात यह थी कि रूढ़िवादी घरानेमें विवाहित होनेके झमेलोंकी एक लम्बी दास्तानने उसकी ज़िन्दगीका रस निचोड़ लिया था। इस प्रकार अपनी नौजवानीमें ही उसके चेहरेपर असफलताकी राख और विरक्तिकी धूलका लेप लगा हुआ था। किन्तु इसके विपरीत वह मानसिक लीलामें डूबा रहता""सैन्फ्रांसिसकोंके किसी कॉलेजमें वॉल्ट ह्विटमैनपर भाषण दे रहा है। सारे हॉलमें श्रोताओंके झुण्ड-ही-झुण्ड दिखाई देते हैं। उनमें एक संवेदनशील, स्वप्नशील लड़की भी जो किसी दूसरी या तीसरी बेंचपर बैठी है, वह उसकी ओर खिंच रही है। भाषण समाप्त। परिचय। वैचारिक आदान-प्रदान, फिर 'ब्लू मून' रेस्तराँ। दोनों एक-दूसरेकी सूरत देखना चाहते हैं। आँखें चुराकर वहाँ वह भारतके सम्बन्धमें पूछती है। वह झेंपते हुए, और बादमें खुलकर, अपना ज्ञान पहले प्रदर्शित और फिर समर्पित करता है। दोनोंका प्रेम हो जाता है। वे विवाहित होते हैं। दोनों अध्यापक हैं अथवा इनमें-से कोई एक पत्रकार है। वे सरल, स्वच्छन्द, उत्साहपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। फिर वह अपनी स्त्रीको भारत लाता है। उसका नाम रख लीजिए—ईरीना। ईरीना और वह दोनों ताज़ी-ताज़ी हवा खाते हुए

विभिन्न प्रकारके, विभिन्न स्वभाव और विभिन्न व्यक्तिगत इतिहास रखनेवाले लोगोंका अनुभव नहीं था। वह अभी बच्चा ही था। उसकी उम्र तेईस-चौबीस सालकी थी। उसके दिल और दिमाग़का चमड़ा अभी मजबूत नहीं था। वह अभी मनुष्यताका सहज विश्वास कर जाता था और उसे मालूम ही नहीं हो पाता था कि आख़िर लोग उसपर क्यों हँस रहे हैं!

जगतमें बड़ी-बड़ी ख़ामियाँ थीं जिनमें-से एक यह थी कि उसके अन्तःकरणमें नफ़ीस लेकिन सादे और कीमती पोशाक पहननेवाले उन गम्भीर मुद्राओंके प्रोफ़ेसरों और अध्यापकोंकी कॉलरमें उज्ज्वलतर ज्ञानके हीरे-मोती लगे हुए थे जो यूनिवर्सिटी और कालेजोंकी बड़ी बिल्डिंगोंके कॉरिडरों और कमरोंमें घूमते रहते हैं। यह बिलकुल सही है कि हमारे यहाँ धन वह सुविधा उत्पन्न करता है जिसके आधारपर लोग ऊँचा ज्ञान प्राप्त करते हैं और बड़ी सफ़ाईके साथ ऊँची बातचीत करते हैं। लेकिन ज्ञानके आलोकको धनके आलोकमें मिला करके और फिर ज्ञान-की उद्दीप्त मनोमूर्ति खड़ी करके देखनेसे अपनी दोनों परिस्थितियोंसे और उन परिस्थितियोंमें घूमनेवाले लोगोंसे अजीब फ़ासले पैदा हो जाते हैं।

जगत अपने बचपनमें ईसाई कॉनवेण्ट स्कूलोंमें पढ़ा था। इसीलिए, उसकी अंगरेजी बड़ी सरल और स्वाभाविक हो गयी थी। उसने ईसाइयतके उत्तमोत्तम नैतिक गुणोंको आत्मसात् करना चाहा था और साथ ही उन्हें अपनी निजकी भारतीय संस्कृतिसे मिला लिया था। 'सर्मन ऑव द माउण्ट' से लेकर 'पृथ्वी सूक्त' तकमें वह रस लेता था।

जगत बेवकूफ़ इसलिए भी था कि अमरीकी जनताकी महान् उपलब्धियोंको अमरीकी सरकार और उसकी विदेश-नीतिसे मिलाकर देखता। परिणामतः, जब डलेस कोई ग़लती करता या आइज़नहॉवर कुछ गड़बड़ कर जाता तो उसे अपार दुःख होता। उसके पास कोई राजनैतिक दृष्टिकोण नहीं था और उस अभावके रिक्त स्थानपर

नहीं भी हो सकता है।

दूसरी ओर, राव साहब किसी विश्वविख्यात, विश्वपूजित स्तूपके चपटे तलपर, हाँ, किसी प्राचीन गौरव-स्तूपपर, कोई चाय-पार्टी जमा रहे थे--अभिमान-सहित, शालीनतापूर्वक, नम्रता और गौरवके साथ। लोगोंका अभिवादन करते हुए वह एक-एक टुकड़ा और सैण्डविच खानेका अनुरोध कर रहे हैं। उनके गदबदे और पृथुल शरीरके श्यामल मुखमण्डलपर प्राचीन गौरवकी सम्मानपूर्ण आभाके साथ ही स्वयंके प्रति गहरा सन्तोष व्यक्त हो रहा था।

मैं इन दोनोंको इसी रूपमें अपनी आँखोंके सामने पाता हूँ। जगत नि:सन्देह बेवक़ूफ़ था। लेकिन वह इसलिए बेवक़ूफ़ नहीं था कि उसके पास युरॅपीय साहित्यका ज्ञान था। यह सच है कि न हम, न हमारा शहर, न हमारा प्रान्त, उसके ज्ञानका उपयोग कर पाता था, न उसका मूल्य समझता था। लेकिन, इसमें जगतका स्वयंका दोष नहीं था। यदि वह ऐसा ज्ञान रखता है और उस ज्ञानमें रमा रहता है जिसका हम मूल्य नहीं समझते या जिसे प्राप्त करनेकी हममें इच्छा नहीं है तो हमारे लेखे वह ज्ञान जो निरर्थक है, उसीसे निर्मित और विकसित व्यक्तित्वको हम यदि आदर प्रदान न करें, उपेक्षा ही करें, मगर उसपर दया तो न करें। सच बात तो यह है कि उनके लेखे जगतकी बड़ी भारी भूल यह थी कि वह उनके समान नहीं था, उनके ढाँचेमें जमता नहीं था और ऐसे निरर्थक ज्ञानमें व्यर्थ ही डूबा रहता था जिससे फ़िज़ूल ही वक़्त बरबाद होता, ऊंचा ओहदा न मिल पाता और उनके लेखे ज़िन्दगी अकारथ होकर बरबाद हो जाती।

जगत बेवक़ूफ़ इसलिए था कि यद्यपि वह कैरियर नहीं बना सकता था (थालीमें परसे लड्डूको उठानेकी भाँति भले ही वह ऑक्सफ़ोर्ड या हॉर्वर्डसे डिग्री ले आये) लेकिन उसके बारेमें सोचा करता था। उसमें सामाजिक क्षेत्रमें घुसने और पैठनेकी शक्ति बिलकुल नहीं थी। उसे

वेदनासे भागनेके लिए, वक़्त काटनेकी एक तरकीबके तौरपर, सामूहिक भोजन, सामूहिक पार्टी, गपबाज़ी, महफ़िलबाजीका आसरा लिया करते। लोग भले ही उसका मज़ा लिया करें, मैं ऐसे बेढंगे, बेजोड़ और बेमेल सोसाइटीमें रहकर बड़ी ही घुटन महसूस करता। यही हाल जगतका भी था। फ़र्क़ यही था कि मुझे इस तरह अकेलेपनसे भागने और वक़्त काटनेकी इच्छा नहीं रहती थी, न जगतको ही रहती थी, इसलिए, हम लोग 'अनसोशल' कहलाते थे। क्लबकी ज़िन्दगी अगर सामाजिकताका लक्षण है तो मैं ऐसी सामाजिकतासे बाज़ आया।

लोगोंको ताज्जुब होता कि आख़िर हम अपना वक़्त कैसे काटते हैं! और, जब उन्होंने यह देखा कि ब्रिज, साँपों और भूतोंकी चर्चा, एक-दूसरेकी टाँग खींचनेकी होड़ और राजनैतिक गपकी बजाय हम घूमने निकल जाते हैं और कभी हैमिंग्वे या डिकेन्स अथवा एड्ना विन्सेण्ट मिलेकी चर्चा करते हैं तो उन्होंने अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। एक बार जब हम तरह-तरहकी चर्चाओंमें विलीन रातके आठ बजे घर लौटनेके बजाय साढ़े नौके क़रीब लौटे तो उनमें-से एकने कहा, "क्यों भई! जानते नहीं, भले आदमी रातमें नहीं घूमा करते!"

और, हम ताज्जुब करने लगे कि आख़िर ये ऊँची डिग्रियोंवाले लोग, जिन्होंने बड़ी उपाधियाँ प्राप्त की हैं, इतने जड़ और मूर्ख क्यों हैं!

दुबले, ऊँचे, इकहरे बादामके पेड़के नीचे हमारे साथियोंको झुका हुआ देखकर मैं समझ गया कि उनकी आँखें हरे कच्चे बादामोंको खोज रही हैं जो या तो आसपासकी क्यारियोंकी काली मिट्टीमें जम गये हैं या क्यारियोंके बीचोबीच जानेवाली ख़ुशनुमा पगडण्डीपर गिरे पड़े हैं। बादामके पेड़के आगे पूरब दक्षिणकी तरफ़ बड़ी और ऊँची भूरी-भूरी

अमेरिका और युरॅप तथा भारतके भयानक दक्षिणपन्थी राजनीतिज्ञ उसके हृदयमें आसन जमाये बैठे थे। यहाँतक कि बम्बई-चुनावमें मेनन-की जीत भी उसे अच्छी लगी नहीं। उसका खयाल था कि बम्बईमें अमेरिकाके भारतीय दोस्तोंने जितना काम किया वह काम आधे दिलसे किया होगा। वह साम्यवादसे और रूस-चीनसे भयानक दुश्मनी रखता था और वह इस सम्भावनासे डरता रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि अमेरिकासे पहले रूस चाँदपर पहुँच जाये।

हमारे बॉस जगतके इस राजनैतिक रुख़से बहुत ख़ुश थे। लेकिन वे जनतासे डरते थे क्योंकि अमेरिका-परस्ती जनतामें न केवल लोक-प्रिय नहीं थी वरन् सामनेका पानवाला और उसके आस-पासवाले गन्दी और चीनी होटलमें बैठे हुए मैले-कुचैले लोग भी अमेरिकाको गाली देते थे। अमेरिकापर किसीका विश्वास नहीं था।

इस भावनाको जगत भी जानता था। इसलिए उड़ते-उड़ते ही वह मुझसे राजनैतिक बात-चीत करता और उस बात-चीतके दौरानमें भारतीय अख़बारोंमें प्रकाशित समाचारोंका एक ढाँचा बनाते हुए लेकिन कोई आलोचना न करते हुए, मैं उसकी बातका खण्डन कर देता, किसी विरोधी तथ्यपर उसका ध्यान खींचता। यही कारण है कि क्रमशः उसकी ज्ञान-ग्राही बुद्धि मेरी अवहेलना न कर सकी और मेरी ओर खिचती चली गयी। इसका श्रेय मैं अवश्य लूँगा कि मैंने उसे किसी भी देशके शासक और जनता—इन दोके बीचकी एकता और मित्रता पहचाननेकी युक्तियाँ सिखलायीं।

यह निश्चित था कि मैं और वह दोनों आपसमें टकरा जाते।

व्यक्तियोंकी टकराहट बहुत बुरी होती है, ज़हर पचनेसे फैलता है, कीचड़ उछालनेसे उछालनेवालेके और झेलनेवालेके—दोनोंके चेहरे बदसूरत हो जाते हैं। मैं हमेशा दो प्रकारके परस्पर-विरोधोंमें भेद करता आया हूँ। एक वे जो सही हैं, जहाँ वे तेज़ होते रहने चाहिए;

उसने कहा, 'क्या हुआ' ?

मैंने कहा, 'कुछ नहीं।'

फिर मैं अपने खयालोंमें डूब गया। इतनेमें गलीको पार करती हुई एक गटर दिखाई दी, जो ठीक बीचमें आकर फैलकर फूल गयी थी। उसमें-का कालापन भयानक था। उसके कीचड़में एक दुबली मुर्ग़ी फँस गयी थी, और पंख फड़फड़ाकर निकलनेकी कोशिश कर रही थी।

सुनहरे चेहरेवालेने मुझसे कहा, 'अगर बॉसने देखा कि हम इस गलीमें-से जा रहे हैं तो समझ जाइए कि मौत आ गयी!'

मैंने कहा, 'क्यों?'

उसने कहा, 'इस गलीमें कमीन लोग रहते हैं और सभ्य लोगोंको यहाँसे गुज़रना नहीं चाहिए।'

मैंने कहा, 'क्यों?'

लेकिन, यह कहते-कहते मेरी भवें तन गयीं, शरीरमें एक उत्तेजना समाने लगी, शायद मेरी आँखोंमें भी तेज़ी आ गयी होगी।

सुनहरे चेहरेने फिर कहा, "बॉसके अनुसार, न सिर्फ़ यहाँ कमीन लोग रहते हैं, वरन् ऐसे घर भी हैं जहाँ···"

मैं समझ गया। उसका मतलब था कि यहाँ व्यभिचार होता है। मैंने कहा, 'खुलकर कहो न! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि यह वेश्याओंका मुहल्ला है?'

मेरे इस कथनसे सुनहरे चेहरेवालेको एक धक्का लगा। उसने कहा, 'कौन कहता है!'

मैंने उलटकर पूछा, 'तो फिर क्या?'

उसने जवाब दिया, 'यहाँ खुले व्यभिचार होता है।'

'होगा! हमसे क्या?'

'हमसे क्यों नहीं! हम इस विशाल सांस्कृतिक केन्द्रके सदस्य हैं और अगर हम इस गन्दी और कुप्रसिद्ध गलियोंमें पाये गये तो हमारा

रास्ता, तालावके किनारे-किनारे, आमके दरख़्तोंके नीचेसे चला जा रहा था।

ज्यों ही हम वीस गज़ आगे वढ़ गये होंगे, हमारे सुनहरे चेहरेवाले साथीने कहा, 'यार, नीचे उतरकर चलें।'

मैंने एकदम ठहरकर, स्तब्ध होकर, पूछा, 'क्यों ?'

उसने कहा, 'यह नया रास्ता है !'

मैंने जगतकी ओर देखा। वह कटी डाल-सा, निजत्वहीन और शिथिल दिख रहा था। मैंने कहा, 'चलो।'

जिस रास्तेपर अवतक हम चल रहे थे, वह तालावके वाँधपर वना हुआ था। वाँधके वहुत नीचे एक छोटा-सा नाला वह रहा था और इधर-उधर घने-घने पेड़ तितर-वितर दिखाई दे रहे थे। हम अपनेको सँभालते हुए नीचे उतर गये और नाला फाँदकर उस ओर जा पहुँचे जहाँसे एक पगडण्डी शहरकी ओर जा रही थी। फाँद करके मैं नालेकी ओर क्षण-भर देखता रहा। वहाँ छोटी-छोटी मछलियाँ आनन्दपूर्वक क्रीड़ा कर रही थीं। ऐसा लगता था कि उनकी क्रीड़ाको घण्टों देखा जा सकता है।

पगडण्डीपर दो ही क़दम आगे वढ़ा हूँगा कि सामने लाखों और करोड़ों लाल-लाल दियोंवाला गुलमुहरका महान् वृक्ष मेरे सामने हो लिया। उसके तलमें अधसूखे, मुरझाये और सँवलाये फूल विखरे हुए थे। और दो-चार फटी चड्डियोंवाले मैले-कुचैले लड़के वहाँ न मालूम क्या-क्या वीन रहे थे !

मैंने शहरका यह हिस्सा देखा ही नहीं था। वायीं ओर अस्पतालकी पीली दीवार चली गयी, जिसके ख़तम होते ही छोटे-छोटे मकान, छोटे-छोटे घर, मिट्टीके घर, चले गये थे। निःसन्देह अस्पतालके पिछवाड़ेकी यह गली थी। दाहिनी ओर खुला मैदान था, जिसमें इमली और नीमके पेड़ोंके अलावा छोटे-छोटे खेत थे। एक खेतके वाद दूसरा खेत।

उनके सम्बन्धमें बहुत-से लोगोंकी धारणाएँ बुरी होना स्वाभाविक ही था।

यह एक तथ्य है। फिर भी दूसरा तथ्य यह भी है कि विद्याकेन्द्र खोलनेके साथ-ही-साथ उनका स्वभाव बदलने लगा।

पहले वे बहुत तेज मिजाजके, ज़िद्दी, न्याय-प्रिय (प्रचलित न्याय-के सीमित अर्थमें) लेकिन अपनी करके छोड़नेवाले लोगोंमें-से थे। उनकी स्त्री बहुत जल्दी मर गयी थी, इसलिए दो बच्चोंके पिता होते भी वे अकेले थे। अब सबसे उन्होंने यह विद्याकेन्द्र खोला, उनमें एक अजीब नरमी आ गयी। उनकी संवेदनशीलता इतनी बनी हुई थी कि वे, जो पहले आदमीको सूँघकर उसकी पहचान बता देते थे, अब केवल उसकी मुखमुद्राको देखकर और उसके चेहरेकी शिकन देखकर उसके दिलकी ताड़ जाते, स्वभाव जान जाते। वे बहुत ज्यादा अकेले थे और उनके सामने यह समस्या बनी रहती थी कि वक्त कैसे काटें। इसलिए वे विद्याकेन्द्रके कर्मचारियोंमें बैठकर अपना समय व्यतीत करते थे।

बस इसी स्थानपर छुपे हुए संघर्षकी वह पृष्ठभूमि थी, जिसके बिना यह किस्सा समझमें नहीं आ सकता। यह उनकी संवेदनशील मनुष्यता थी, जिससे प्रेरित होकर वे अपने साथियोंकी सहायताके लिए दौड़ पड़ते, और अपने नुकसानकी परवाह नहीं करते थे। वे राजा आदमी थे। वे प्रेम करते थे। और, प्रेमकी तानाशाही भी उनमें थी जो शासकवर्गकी तानाशाही मनोवृत्तिसे घुल-मिलकर इतनी एकप्राण हो गयी थी कि यह कहना कठिन था कि वह शासकवर्गकी तानाशाही है या प्रेमका अधिनायकत्व है। उनके हाथसे जितनी अधिक सेवा और सहा-यता होती जाती उनकी मनोवैज्ञानिक रचनामें परिवर्तन होता जाता। प्रेम-भाव बढ़ता जाता और प्रेमकी तानाशाही बढ़ती जाती। उनका भोलापन भी बढ़ता जाता। उनकी खुशामद कर, उन्हें विश्वासमें लेकर धोखा देना बड़ा ही सरल था। यद्यपि ऐसी कोई वारदात अभीतक

विशाख

दिये और उनकी एक जायदाद खड़ी कर दी।

यह क़िस्सा है। मनुष्यका चरित्र उसकी संगतसे पहचाना जाता है। सम्भव है, हमारे बॉसकी भी इसी तरहकी प्रेमिकाएँ रही हों। कौन नहीं जानता कि एक प्रदेशके एक मन्त्री—जिनका नाम मैं यहाँ लेना नहीं चाहता—की एक रखैल यहाँ आलीशान मकानमें रहती है, जिसे शहरके बाहरके एक मुहल्लेमें बनाया गया है। शहरमें किसीसे भी पूछ लीजिए, उसके मकानका अता-पता आपको मिल जायेगा।

बॉसके विरुद्ध तिरस्कारके कई कारण थे, जिनमें-से एक यह भी था कि वे स्थानीय नरेशके एटर्नी रहे। वहाँ खूब आना-जाना रहा। और उसीकी (वह अब मर गया है) सहायतासे उसने परिश्रम करके यह विद्याकेन्द्र खोला। वे एक बड़ी-सी ज़मीनके मालिक हैं और कई छोटे-मोटे धन्धोंमें उनका पैसा लगा हुआ है। लेकिन, चूँकि वे एक प्रसिद्ध विलायती मिलके असिस्टेण्ट मैनेजर रह आये तो इसलिए उन्होंने यहाँके बहुत-से सेठ-साहूकारोंपर उपकार किया। वे उपकार करनेकी शक्ति रखते थे। लोगोंपर अहसान करके उन्हें अपनी कठपुतली बनानेमें बड़ा मज़ा आता था। यों कहिए कि लोगोंको उनकी कठपुतली बननेमें मज़ा आता था। बात दोनों ओरसे थी। महत्त्वकी बात यह है कि वे क़ायदेके पाबन्द थे और क़ानूनके अनुसार काम करनेमें हिचकिचाते नहीं थे। यूनियनोंमें संगठित मज़दूर-वर्ग उनसे कभी खुश नहीं रह सकता था, क्योंकि वे अँगरेज़ोंके वफ़ादार नौकर थे, और इसीलिए उनकी चलती भी थी। स्वाधीनताके बाद भी कुछ दिनों तक वे मिलके असिस्टेण्ट मैनेजर रहे। लेकिन नये मालिकसे उनकी नहीं पटी। उन्होंने नौकरी छोड़ दी। उधर, भूतपूर्व मुख्यमन्त्री (जो अब मर गये हैं)—उनसे उनकी खूब पटती थी इसलिए अधिकारीवर्गपर भी उनका अच्छा-खासा असर था। संक्षेपमें, वे इस शहरके बहुत प्रभावशाली और शक्तिशाली लोगोंमें-से थे। और पूरे सामाजिक सन्दर्भको देखते हुए

गतिविधियोंपर शासन कर अपना प्रभुत्व-लोभ पूरा करते थे; ऐसी मेरी अपनी कल्पना है।

दूसरी तरफ़ उस दरबारका एक सदस्य दूसरे सदस्यसे सिर्फ़ ऊपरी तौरसे मिलता था क्योंकि ज़्यादातर लोग बेढंगे, बेजोड़ और बेमेल आदमी थे। जिन्दगी कैसे जीयी जाये, सब लोगोंके अलग-अलग ख़याल थे। सब एक-दूसरेसे अलग थे और हर एकमें ऐसा गहरा अकेलापन था, जिसे काटनेके लिए मसालेदार गपबाज़ीके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। महफ़िलबाज़ीके बावजूद, उनके अकेलेपनकी गहराइयाँ बड़ी ही अँधेरी और निजी थीं। इस माहौलमें सब लोग यदि एक-दूसरेकी सहायता भी करते तो भी काटनेके लिए दौड़ते। एक-दूसरे-की टाँग खींचना एक मामूली बात थी। एक अजीब क़ैद थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको विफल अनुभव कर रहा था।

और, फिर भी किसीमें यह साहस नहीं था कि इस उलझी गुत्थीको तोड़े। क्योंकि यह सम्भव था कि यदि कोई उसे तोड़नेकी कोशिश करे तो दूसरा आदमी उसके विरुद्ध और अपने हितमें नाजायज़ फ़ायदा उठा लेता। और लोग अपना-अपना हित उसी प्रकार देखते थे, जैसे चींटी गुड़को।

इस विद्याकेन्द्रमें किसीको भी विद्यानुराग नहीं था। यहाँतक कि पढ़ानेका जो काम है उससे सम्बन्धित बातोंको छोड़कर जो व्यक्ति इधर-उधर किताबें टटोलता या अपने विषयमें रस लेने लगता और उस विषयमें रसमग्न होकर बात-चीत करता तो लोग बुरा मान जाते। समझते कि वह पढ़ाकू हो रहा है। हमारे यहाँसे जो लोग पी-एच० डी० या डी० एस-सी० होने गये, वे अपने आँकड़े समझाकर गये थे। वे सिर्फ़ पी-एच्० डी० चाहते थे, जिससे कि वे अगली सीढ़ीपर चढ़ सकें। यही क्यों, हमारे यहाँका जो सबडिविजनल ऑफ़िसर था, वह ख़ुद डी० एस्-सी० था, जब कि वह पढ़ा-पढ़ाया सब-कुछ भूल चुका था।

हुई नहीं। लेकिन, सबको यह बात साफ़ नज़र आ रही थी। लिहाज़ा, कुछ लोग इसीमें जुटे रहते। इतना अच्छा था कि वे इस रहस्यको खूब अच्छी तरह समझते थे, क्योंकि अपने जीवन-कालमें उन्हें ऐसोंका खूब तजुर्बा मिल चुका था।

और, जैसा कि होता है, वे प्रेमके अधिकारका प्रयोग करते निःस्वार्थ भावसे। लेकिन, यहीं गड़बड़ थी; क्योंकि अब उन्हें अपने प्रेमके अधिकारसे दूसरोंका जीवन-निर्माण करनेमें बड़ा मज़ा आ रहा था।

लोग इस बातके लिए तैयार नहीं थे कि उनके ढाँचेमें अपनी ज़िन्दगी फ़िट करें। उनका खयाल था कि खूब अच्छी ज़िन्दगी बितायी जाये—पैसा हो, ठाठ हो, समाजपर असर हो, और हो सके तो हाथसे अच्छी चीज़ बन जाये। उनके इस खयालसे हमारे यहाँ लगभग सभी एकमत थे। लेकिन जीवनके विभिन्न विषयोंपर लोगोंके अलग-अलग आचार-विचार थे। एक तरहसे देखा जाये तो अपनी खुदकी ज़िन्दगीसे वे रिटायर हो चुके थे। ज़िन्दगीमें ठाठसे मतलब क्या! घर, ज़मीन, जायदाद, ऐश! और महफ़िल या दरबारमें मसालेदार गपबाज़ी। सब लोग तो वैसा करनेसे रहे, क्योंकि उन्हें उतनी तनखाह ही नहीं मिलती थी। सिर्फ़ महफ़िलमें बैठकर मसालेदार गपबाज़ी ही बच रही थी। सो लोग करते ही थे। और घर, ज़मीन, जायदादका मोह, उन्नतिका मोह सबको था, बशर्ते कि वह पूरा हो! और, फिर भी, आदमीकी पसन्दगी-नापसन्दगी, रहन-सहन आदिके तरीक़े अलग-अलग होते हैं! किसी दूसरे आदमीके ढाँचेमें वे फ़िट नहीं किये जा सकते। अपनी-अपनी उन्नतिकी कल्पना भी अलग-अलग होती है!

जो हो, एक ओर उनके अहसान और दूसरी ओर उनके प्रेमसे दबकर, हम लोग उन्हें अपना 'साथ' प्रदान करते, कि वे अपना वक़्त काट सकें। अपना साथ उन्हें प्रदान करना एक तरहसे अनिवार्य कर्त्तव्य हो गया था। दूसरे वे भी आज चायके बहाने, कल पार्टीके बहाने, परसों

मजबूत गुस्सा और एक थमी हुई रफ़्तार है। मुझपर उसके सौन्दर्य-का (यदि वह सौन्दर्य कहा जाये तो) एक हलका-सा आघात हुआ। और मुझे गोर्कीकी कहानियोंके पात्र याद आने लगे। गुलमोहरके पेड़के नीचे जाने क्या बीनते हुए फटेहाल लड़के—पेड़के नीचे पत्थरपर बैठा हुआ आवारा चेहरा, और अब यह स्त्री-मूर्ति जो मानो संगमूसाकी चट्टान काट करके बनायी गयी हो।

सुनहरे चेहरेवालेने कहा, 'यह धोबिन है, मेहनतसे उसका शरीर बना है।'

मेरे मुँहसे निकल गया, 'चण्डीदासकी प्रेमिका।'

जगतने मुझे सुधारा, 'शी:, चण्डीदासकी प्रेमिकाके चेहरेपर इतने कठोर भाव नहीं हो सकते!'

मैंने तुरन्त ही अपने-आपको सुधारकर कहा, 'वह चण्डीदासकी प्रेमिकाकी बहन तो हो ही सकती है। नहीं-नहीं! वह तो गोर्कीकी कोई पात्रा है!'

सुनहरे चेहरेवाला समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री था। उसने कहा, 'यह मिक्स्ड ब्लड (वर्णसंकर) है, मेस्टिजो (दक्षिण अमरीकाके वर्णसंकरके समान) है।' और मुझे देखकर वह हँस पड़ा।

मैं उसका भाव समझ गया। इस शहरकी समाजशास्त्रीय लोक-प्रक्रियाकी ओर उसका इशारा था। यहाँके, इस क्षेत्रके इस प्रदेशके मूल देशवासियोंने शायद ही कभी राज्य किया हो। साधारण जनता मूलतः किसान थी। वह निचली जातियोंसे बनी थी। राजस्थानके और पश्चिम उत्तर प्रदेशके, आन्ध्रके और महाराष्ट्रके लोगोंने आकर यहाँ ज़मीन-जायदाद बनायी। यहाँका मध्यवर्ग इन्हीं लोगोंसे बना। और पुराने ज़मानेसे इन ज़मीन-जायदाद बढ़ाते हुए यहाँकी निम्न-वर्गीय स्त्रियोंको अपने घरमें रखा और उससे जो वर्णसंकर सन्तानें पैदा हुईं वे भी अन्ततः उसी निचली जनतामें मिल गयीं। निःसन्देह, इस

इस प्रकार, 'चाहे जैसे व्यक्तिगत उन्नति करना' एक प्राकृतिक नियमका उच्च और अनिवार्य पद प्राप्त कर चुका था। इन तथ्योंको मैं कण-भर भी बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रहा हूँ। विज्ञानवालोंको यह मालूम नहीं था कि हाल ही में कौन-कौन-से महत्त्वपूर्ण आविष्कार हो रहे हैं और हिन्दीवालोंको यह ज्ञान नहीं था कि आजकल इस क्षेत्रमें क्या चल रहा है। और जो मालूम भी था, वह केवल सुना-सुनाया था, अस्पष्ट था, धुंधला और उलझा हुआ था। और, इस बीच हमारे यहाँके एक 'विद्वान्'ने अपने विषयके और दूसरे विषयके अपने विश्वविद्यालयके और दूसरे विश्वविद्यालयके तरह-तरहके 'गेस-पेपर्स' निकालकर एक प्रकाशकसे आठ-एक सौ रुपये कमा भी लिये थे।

वैसे हम सब नौजवान थे, कई उपाधियोंसे विभूषित थे, अपने विषयके आचार्य माने जाते। एक तरहसे हम भोले थे, सरल हृदय भी थे, हम किसीके दुःखसे पिघल सकते थे, सहायता भी करते। लेकिन, हममें सामाजिक अन्तरात्मा नहीं थी, सामाजिक चेतना नहीं थी क्योंकि असलमें हम सब लोग हरामखोर थे। और मज़ा यह है कि वैसे व्यक्तिशः हम बुरे भी नहीं थे; भलेमानस कहलाते थे, अच्छे आदमी थे। अच्छा आदमी वह होता है जिसकी बुराई ढँकी रह जाती है चाहे आप-ही-आप, चाहे किये-करायेसे। हम ऐसे भलेमानस थे।

हमने उस गलीके बीचमें-से गटर पार की ही थी कि एक साँवली औरत दिखाई दी, जिसका नाक-नक्श सगमूसाकी चट्टानमें-से काटा गया दिखाई देता था। वह इतनी मज़बूत थी, उसका स्नायु-संस्थान इतना दृढ़ था, कि लगता था, उसका चेहरा भी, जिसकी रेखाकृति सरल और निर्दोष थी, उसी शक्ति और दृढ़ताका परिचायक है। कोई भी कह देता कि उसके श्यामल मुखमण्डलपर एक गौरवपूर्ण अभिमान, एक

मैंने कहा, 'लेकिन, तुम उस व्यक्तिकी आलोचना करना बुरा नहीं समझते, जिसने तुमपर बहुत उपकार किये हैं ?'

उसने साफ़-साफ़ कहा, 'बिलकुल बुरा नहीं समझता। आखिर तुम्हीं बतलाओ मिस्टर जगत, किसी दूसरेमें जो बुराइयाँ हमें महसूस होती रहती हैं और काँटे-सी खटकती हैं उनकी आलोचना क्यों न की जाये।'

मैंने जवाब दिया, 'मनुष्यता यह कहती है कि उपकारका बदला अपकारसे न दिया जाये।' भचावतने ज़िद करके कहा, 'लेकिन आलोचना यदि ग़लत हो तो अपकारका ही एक रूप क्यों न समझा जाये।'

मैंने बात और आगे बढ़ायी, 'लेकिन, बॉस तो वैसा नहीं समझता; दुनिया तो वैसा नहीं समझती; लोग तो वैसा नहीं समझते !'

भचावतने अब ज़िद पकड़ ली। उसने कहा, 'देखो भाई, यह साफ़-साफ़ बात है। यह हमारे-तुम्हारे बीचकी बात है। जानते हो न कि हमारे बॉस साहब कौन हैं ? इस शहरके नामी-गिरामी शैतान हैं। उनके ज़मानेमें मज़दूरोंपर कितनी बार लाठी-चार्ज नहीं हुआ, या गोलियाँ नहीं चलायी गयीं ! रियासतके ज़मानेमें अँगरेज़ पोलिटिकल एजेण्टके कहनेसे कितने ही काँग्रेसी जेलमें सड़ा दिये गये और मार डाले गये। यह सब पुराना क़िस्सा है। लेकिन इस क़िस्सेका एक प्रमुख पात्र कौन है—किसके ज़रिये यह सब किया जाता रहा ? हमारे बॉसके ज़रिये !...... आज भी देखो न ! बगीचेमें-से आँवले तोड़कर ले जाने-वाले लड़कोंको उस शख़्सने, जिसे दो क़दम चलनेमें भी तकलीफ़ होती है, कितना नहीं पीटा ! और हमारे दरबारके लोग ताकते रह गये। रिश्वत देना, रिश्वत लेना तो बुराई है न ! उसका प्रयोग करते हुए कितने काम नहीं किये-कराये जाते। लेकिन चोरी, और वह भी खाने-पीनेकी चीज़ोंकी, ज़मीन-जायदादकी, उसके लेखे, जघन्य अपराध हैं। सामनेके तालाबमें फटेहाल लड़के मछली चुराने आते हैं। उन्हें किस तरह ठोका-पीटा जाता

का प्रयोग करते। बहुत-से मध्यवर्गीय परिवारोंकी वह मातृभाषा भी हो गयी थी। सुनहरे चेहरावाला हमारा साथी इस जनताको खूब अच्छी तरह जानता था। उनकी गन्दी और धुएँधार होटलोंमें चाय पीनेमें उसे मज़ा आता। बहुत ही अपनेपनसे उनसे पेश आता।

अब मुझे समझमें आया कि वह मुझे कहाँ ले जा रहा है। वह हमें इसी प्रकारकी एक होटलमें ले जा रहा था।

सुनहरे चेहरेवालेने मुझसे कहा, 'अब आप हेमिंग्वे भूल जाइए, मैं आपको गन्दी जगहमें बहुत अच्छी चाय पिलाने ले जा रहा हूँ।'

अब सड़क आ गयी थी। होटल सड़कपर ही थी। पानवालोंकी तीन दुकानें वहाँ थीं।

हम ज्यों ही होटलमें घुसे, जगतने अपनी फ़र्राटेदार अँगरेज़ीमें कहा, 'अगर बॉसने देख लिया तो वह तुरन्त ही हमें इन्स्टीट्यूशन (संस्था) से निकाल बाहर करेगा। मैं तो मिस्टर भचावतको आगे कर दूँगा। कहूँगा कि यह मुझे वहाँ ले गया था, मैं तो भोला-भाला आदमी हूँ, मैं क्या जानूँ कि वह मुझे किस डिसरेप्यूटेबल (बदनाम) जगह ले जाता है....' यह कहकर जगत ज़ोरसे हँस पड़ा।

सुनहरे चेहरेवालेने उसकी ओर आँखें गड़ाते हुए और गन्दी गाली देते हुए कहा, 'ज़बान बन्द करो। डिसरेप्यूटेबल तुम हो। साले, तुम्हारे —डिसरेप्यूटेबल है, और तुम्हारा बॉस डिसरेप्यूटेबल है और तुम्हारी जेब डिसरेप्यूटेबल है।'

जगतने इन गालियोंको, प्यारके फूलोंकी बरसातके रूपमें ग्रहण कर सुनहरे चेहरेवालेकी पीठ थपथपाते हुए कहा, 'मेरे उपन्यासका नया अध्याय तुम्हारे चरित्रसे और होटलसे शुरू होगा मिस्टर भचावत।'

मिस्टर भचावत एक अजीब शख़्सियत रखता था। बॉसने सबसे

यह चाहिए कि साफ़-साफ़ कहूँ। लेकिन, सवाल यह है कि झगड़ा कौन मोल ले, हमें क्या मतलब, हमसे क्या काम है !

लेकिन भचावत ? भचावत बदमाश है। वह यह धोखा खड़ा करना चाहता है कि वह उनका है, लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता।

और फिर भी भचावतने जो बातें कहीं, उनमें बहुत-कुछ सार दिखाई दिया।

हम ज्यों ही पान खाकर रास्तेपर चलने लगे, मैंने भचावतसे कहा, 'मिस्टर हम ज़रा घूमते हुए आयेंगे, तुम इधरसे निकल जाओ !'

उसने जवाब दिया, 'क्यों इण्टरनेशनल बात करनी है ! ख़ैर जाओ। लेकिन वो लोग मुझे क्या कहेंगे। ख़ैर जाओ ! मैं कह दूँगा कि वे इण्टरनेशनल बात करने निकल गये हैं।'

भचावत डग बढ़ाता हुआ निकल गया, और मैं वहीं दो-चार क़दम इधर-उधर हुआ। मैंने कहा, 'जगत, किधर चलें !' जगत स्तब्ध खड़ा रहा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। मैं ताड़ गया कि वह दरबारमें जल्दीसे जल्दी हाज़िर होना चाहता है जिससे कि वह फ़िज़ूलकी बातचीतका विषय न बने।

भचावत जब आगेके चौराहेपर पहुंच गया होगा, तब हम बिजलीके चारखम्भेके पीछे धीरे-धीरे पैर बढ़ा रहे थे। मैं बहुत उदास हो गया था, दिल भारी हो उठा था। लगता था कि पैर आगे नहीं उठ रहे हैं। अगर वहीं कहीं कोई बैठनेकी जगह होती तो मैं अवश्य बैठ जाता। एक ग़मग़ीन सूनापन दिलमें घिर रहा था; दिमाग़में अँधेरे-के पंख भन्ना रहे थे; भयानक व्यर्थताका भाव रह-रहकर उमड़ उठता था और अपनी असमर्थताका भान घुटनोंमें दर्द और दिलमें कलोर पैदा करता था। और मुझे ग़ालिबका शेर याद आया,

और वेचनेकी, खरीदे जानेकी और वेचे जानेकी आज़ादी है ! हमने अपना व्यक्ति-स्वातन्त्र्य वेच दिया है, एक हद तक तो इसलिए........"

जगत झल्ला गया। उसने कहा, 'मैं इस वातसे इनकार करता हूँ कि हमने अपनी स्वतन्त्रता वेच दी है।'

भचावत एक अजीव हँसी हँसा, जिसे देखकर मुझे किसी अघोर-पन्थी साधुकी याद आ गयी।

उसने कहा, 'तुम क्या समझते हो और क्या नहीं समझते—इसका सवाल नहीं है ! सवाल यह है कि क्या उस मजलिसमें अपने दिमाग़में उठनेवाले या पहलेसे उठे हुए ख़यालोंको ज्योंका त्यों ज़ाहिर करनेकी आज़ादी है !'

यह कहकर भचावत जगतकी तरफ़ आँख गड़ाकर देखने लगा। तो मैंने इस वातका जवाव दिया, 'आख़िर किसीने आपको अपनी मनकी वात कहनेसे रोका तो नहीं है !'

भचावतने चाय पीनेकी समाप्तिका कार्यक्रम पान खानेसे शुरू किया। पान खाते-खाते वह कहने लगा, 'तो तुम क्या यह सोचते हो कि अपने मनकी वातें साफ़-साफ़ कहनेसे आपकी नौकरी टिक जायेगी ? अजी, दो दिनमें लात मारकर निकाल दिये जायेंगे। जनाव यह मेरी चौदहवीं नौकरी है। ज़्यादा ख़तरा अव मैं नहीं उठा सकता। सच कहता हूँ इसलिए वदमाश कहा जाता हूँ. क्योंकि मैं अवतक व्यक्ति, स्थिति और परिस्थितिको न देखकर वात करता था। मैं वदमाश था। अव मैं सोच-समझकर, अपनेको भीतर छुपाकर, मौक़ा देख करके वात करता हूँ, इसलिए लोग मुझे अच्छा समझते हैं। सवाल लिखित क़ानूनका नहीं है। लिखित नियम तो यह है कि व्यक्ति स्वतन्त्र है। किन्तु, वास्तविकता यह है कि व्यक्तिको ख़रीदने और वेचनेकी, ख़रीदे जाने और वेचे जानेकी, दूसरोंकी स्वतन्त्रताको खरीदनेकी या अपनी स्वतन्त्रताको वेचनेकी आज़ादी है। लिखित नियम और चीज़ है, वास्त-

घटमें-से, चितापर-से अभी उठकर चली आयी है। ये सज्जन गणित-शास्त्री हैं। उनके बग़लमें एक महोदय बैठे हुए हैं, जिनकी बैलकी-सी मोटी गरदनपर एक नीला रूमाल लिपटा हुआ है। ये महोदय ठिगने और चौड़े तो हैं ही, उनके चेहरेपर जड़ी हुई आँखें बहुत बारीक हैं और एक आँख कानी है। उनके माथेका ढाल ऊपरसे नीचेकी ओर जा रहा है। माथा एकदम छोटा, तंग है; उसकी चौड़ाई तीन अंगुलसे शायद ही बड़ी हो। सिर लगभग चपटा है और पीछेकी तरफ़ एकदम समाप्त होता है जिससे यह लगता है कि गरदन ही सिरपर चढ़ गयी है। चेहरा खूब भरा हुआ गोल और छोटा है। नाक छोटी, तीखी और संवेदनशील है और छोटे-छोटे होठ हैं। कुल मिलाकर, लोग उनकी तरफ़ एकदम आकर्षित होते हैं, किन्तु उनपर उस व्यक्तित्वका प्रभाव बुरा पड़ता है।

इस समय उनके मुँहमें चॉकलेटकी गोलियाँ भरी हुई हैं—जेबमें तो वे उन्हें हमेशा रखते ही हैं। उनके पास, कुरसीपर एकदम दुर्बलकाय ऊँची लड़की बैठी हुई है, जिसके लम्बे चेहरेपर चश्मा लगा हुआ है। सारा चेहरा चार लम्बी सलवटोंमें बाँटा जा सकता है और वह ऐसा बिगड़ा हुआ-सा लगता है मानो उन्होंने कोई निहायत कड़ुई दवा अभी अभी खायी हो और उसकी डकार ऊपर आ रही हो और आ न पाते हो। वे रसायनशास्त्री हैं। उनके बग़लमें एक भीमकाय व्यक्ति बैठे हुए हैं जिनकी पीठ कमसे कम ढाई फ़ुट ऊँची होगी और खूब चौड़ी। वे जब हँसते हैं तो ऐसा लगता है कि प्रतिध्वनिकी लहरोंसे कहीं दरख्त ही न टूट जायें। उनका चेहरा ऐसा भूरा-सफ़ेद है जैसे बैलका पुट्ठा हो। वह ऊपरसे गोल, मांसल और पुष्ट हैं, नीचेसे एकदम तिकोना! वे भी चश्मा पहने हुए हैं और ऐसा लगता है जैसे वे हर चीज़को घूरकर देख रहे हों। वे भूरी नेहरू जैकेट पहने हुए हैं, और इस समय हाथमें रखे अपने डण्डेको हिला-डुला रहे हैं। वे संस्कृतके विद्या-वारिधि हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृतिपर एक शोध-ग्रन्थ भी लिखा है। वे यहाँ काफ़ी प्रति-

सकता !....' मैंने जगतसे कहा, 'हमें अपने वर्गमें रहनेका मोह है, निचले वर्गमें जानेसे डर लगता है। लेकिन क्रमशः हमारी स्थिति गिरते-गिरते उन-जैसी ही होती जाती है तो वहाँ सहर्ष ही क्यों न पहुँच जायें ! लेकिन वहाँ भी मुक्ति नहीं है, क्योंकि उस स्थानपर भी घोरतर उत्पीड़न है।'

'और फ़ासले ? कितने फ़ासले हैं, हमारे और तुम्हारे बीचमें। तुम्हारे और भचावतके बीचमें, भचावतके और किसीके बीचमें, ये दिल मिलने नहीं देते।'

और ठीक इसी क्षणमें जगत न मालूम किस स्फूर्तिसे चल-विचल हो गया। वह बीचमें कूद पड़ा। उसने मेरे आत्मनिवेदनमें हस्तक्षेप किया और कहने लगा, 'अमरीकी लेखकोंने भी इसी तरहकी परिस्थितियोंका सामना किया है। यह कोई नयी परिस्थिति नहीं है।'

मैं सिर्फ़ हँस दिया, यद्यपि जगतकी बातमें सार-तत्त्व था।

और, फिर हम मशीनकी भाँति वहाँसे उठ खड़े हुए। कोई निश्चय —अस्पष्ट और अधूरा—मेरे दिमाग़में चल-विचल होने लगा।

मैंने मुँह लटकाकर रास्तेमें जगतसे कहा, 'आदमी-आदमीके बीचके फ़ासले दूर कैसे होंगे ?'

जगतने एक गहरी साँस ली। उसने कहा, 'इनको बातचीतसे दूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि वहाँ तरह-तरहके भेदोंकी दलदल है।'

तब मैंने मानो ज़ोरसे चीखकर कहा, 'हाँ, हमें इस दलदलको सुखाना होगा। लेकिन, उसके लिए तो किसी ज्वालामुखीकी ही आग चाहिए।'

बातचीत और भी थकाये डाल रही थी, एक अबूझा दर्द भर रहा था। लगता था कि हम किसी अँधेरी सुरंगमें भटकते-भटकते अब यहाँ

'अच्छा, दस रुपये दूंगा।'

मोटी गरदनवाले महोदय एकदम उठ खड़े हुए और कहने लगे, 'एकदम तैयार हूँ; इतनी मिठाई तो मैं बचपनमें खा जाता था।' और ठहाका मारकर हँसने लगे।

मिस्टर राजभोजके लिए तीन सेर, हम सब लोगोंके लिए दो सेर मिठाईका ऑर्डर दिया गया।

यद्यपि लोग उकताये हुए थे (क्योंकि इसी तरहकी बातें ज़रा-से उलट-फेरके साथ रोज़ चलती थीं,) पर मिठाईकी प्रतीक्षामें बैठे रहे और उठ पड़नेके ज़बरदस्त मोहको दबा गये। कि इतनेमें....

दूरसे, एक चमकदार आदमी और उसके साथ दो-तीन आदमी और आते दिखाई दिये। वे अभी बोगनविलासे लदे फाटकके पास ही थे। चमकदार आदमी काला महीन ऊनी पैण्ट और सफेद बुशकोट पहना हुआ ऊँचा गोरा-चिट्टा व्यक्ति था। उसका चेहरा लम्बा था, जिसपर कुलीन आभिजात्यकी आभा फैली हुई थी, जो उसकी आत्म-विश्वासपूर्ण चाल-ढाल, मज़ाक़-भरी मुसकराहट और उँगलियोंमें फँसी सिगरेटकी राख झिड़कनेकी तरकीबोंसे प्रकट हो रही थी। काली फ़्रेमके चश्मेके ऊपर, दो-चार रेखाओंवाले माथेके नीचे घनी-घनी भौंहें थीं और कानके ऊपर दो-चार लम्बे बाल ऊँचे उठे थे। वह इस तरह चल रहा था, जैसे यहाँका सारा इलाक़ा उसीका है।

वह लम्बी आसान डगें उठाता हुआ चला आ रहा था। उसके पीछे एक छोटे क़दका, गोरे रंगका पचास-साला आदमी चल रहा था, जिसके आगेके दाँत टूटे हुए थे। उसका छोटा लम्बा चेहरा पानकी पीकसे भरा था। वह शहरकी पोशाकसे ठेठ यहाँका कांग्रेसी लगता था। उसकी चाल-ढाल ऐसी थी कि लोगोंको यह भय था कि कहीं फिरसे यहाँका चुनाव न हो। उसके पीछे एक लम्बा काला पहाड़ी

पढ़नेको मिला था। असलमें, वह पिशाच-वोधका उदाहरण था। लोगोंने उनकी कहानीका अच्छा-खासा रस लिया, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी। पता नहीं कैसे, उनकी कहानीके सिलसिलेमें ही अपराधोंकी चर्चा चल पड़ी, जो 'ब्लिट्ज' नामक पत्रमें निकला करती थी। अपराधोंपर से होती हुई वह धारा महाराजा तुकोजीराव होलकर तक गयी और वहाँसे वहती हुई वेश्याओं तक आयी। फिर संस्कृतके विद्यावारिधिने गणिका और वेश्याका भेद वताया और फिर उन शहरोंपर चर्चा चल पड़ी, जहाँ वेश्याओंके प्रसिद्ध मुहल्ले हैं। फिर उन शहरोंकी अन्य विशेपताओंपर दृष्टि जाते ही युनिवर्सिटियोंके प्रशासनपर चर्चा चल पड़ी और फिर विद्यार्थियोंकी अनुशासनहीनताकी घाटीमें-से वहती हुई वह धारा राजनीतिज्ञोंपर गयी और वहाँसे वहती हुई चुनाव तक आ पहुँची, वम्वईके चुनाव तक!

कृष्णमेननके चेहरेपर भी चर्चा चली और वहाँसे वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिका किनारा छूती हुई, राजनीतिज्ञों-द्वारा दी जानेवाली पार्टियों तक पहुँची। और उन पार्टियोंसे वहती हुई वह शरावकी क़िस्मों तक आयी, और फिर वहाँसे अँगरेजोंके खान-पानसे होती हुई वह महाराष्ट्रीय 'वरण' और 'पूरणपोड़ी' तक पहुँची और फिर वहाँसे एक विस्फोटकी भाँति मोटी गरदनवाले अर्थशास्त्रीसे प्रश्न पूछा गया, (पूछनेवाले स्वयं वॉस थे)—'वताओ, तुम कितने रसगुल्ले खा सकते हो?'

मिस्टर राजभोजने कहा, 'यही लगभग दो सेर।'

वॉसने कहा, 'तीन सेर खाओगे?'

राजभोजने कहा, 'नहीं, इतना नहीं खा सकते!'

'अच्छा तुम्हें पाँच रुपये दूँगा, अगर तुम इतना खा जाओ तो!'

'नहीं सा'व, इतनी कम क़ीमतमें इतनी तकलीफ़ नहीं उठायी जा सकती।'

उसका आनन्द भी लेते थे।

असल चीज़ यह है कि मिस्टर मचावत लोगोंके ऐब देखनेमें बहुत होशियार हैं। अगर सिर्फ़ ऐबोंको देखते रहते तब भी कोई बात नहीं थी, वे उन कमज़ोरियोंको अपनी क्रीड़ा-व्यवहारका विषय बनाते। यह बड़ी खतरनाक बात थी। ऐसे लोग दुश्मन पैदा कर लेते हैं। और अगर यहाँ उनके कोई शत्रु नहीं हुए तो इसका कारण यही था कि यहाँके लोग अत्यन्त सदाशय थे और किसीकी चार बातें सह लेना जानते थे।

मचावतने बताया, 'यह जो बॉसके पास बैठे हुए सुनहरे और ऊँचे-पूरे व्यक्ति हैं, जो बुशकोट पहने हुए हैं और बड़ी अदाओं अन्दाज़के साथ सिगरेट पी रहे हैं वे यहाँके एक रईस हैं। अपने शहरके पासके ज़मीदार (विधवा स्त्री है वह) के दीवानके वे लड़के हैं। उनकी अपनी कोई कमाई नहीं, उनकी अपनी कोई मेहनत नहीं है। उन्होंने सिर्फ़ विधवा ज़मीदारिनके साथ मेहनत की है, (हम सब लोग हँसते हैं) उसीका शुभ परिणाम वे भोग रहे हैं। शहरसे पूछ लीजिए, उनके अपने घरवालोंसे पूछ लीजिए, वे सब यही कहानी बतायेंगे, क्यों राव साहब ?'

राव साहबको काटो तो खून नहीं। वे स्तब्ध हो उठे। और कुछ नहीं बोले। मचावत आगे कहता गया, 'यहाँके कई रईसोंको बिगाड़ने और धूलमें मिला देनेका कार्यक्रम उन्होंने सफल करके दिखाया। कई रईस उनकी सुहबतमें प्रसिद्ध शराबी और रण्डीबाज़ होकर चौपट हो गये। अब वो अपने बॉसके साथ बिज़नेस करना चाह रहे हैं। हर तीसरे साल अपनी कार बदलते हैं और हर दूसरे साल अपनी प्रेमिका।'

रावसाहबने सँभालनेकी, गला साफ़ करनेकी चेष्टा की। नाटकीय-से स्वरका एक विस्फोट किया; और कहा, 'अपने बॉस उनके घरफ़रमें नहीं आ सकते।'

क़दका आदमी चल रहा था, जिसका हर अंग सुडौल, मजबूत और भरा-पूरा था। उसके चेहरेपर चिकने पत्थरकी कठोर निस्तब्धता थी। साथ ही, उसका मुखमण्डल चमचमा रहा था, यद्यपि वह मुँहपर तेल नहीं लगाता था लेकिन चेहरा तेलिया दीखता था। वह पैण्ट और बुशकोट पहने हुए था। उसकी पोशाक़ गन्दी थी। वह ईसाई मोटर-ड्राइवर था। नये आगन्तुकोंको देखकर, हममें-से कुछ लोग बेचैन होने लगे, कुछ अपनी सीट छोड़कर बेचैन होना चाहने लगे।

मोटी गरदनने इधर-उधर ताकना शुरू किया। मैं सबसे पहले उठकर मीटिंग भंग करनेकी चहलक़दमी करते हुए एक पेड़की छायामें चहलक़दमी करने लगा। धीरे-धीरे इधर-उधर देखकर किसी-न-किसी गुन्ताड़े या बहानेसे लोगोंने उठना शुरू किया।

मेरे पास जगत भचावत और राव साहब आकर खड़े हो गये। राव साहबकी चाँदीकी डिबिया खुल गयी। पानकी लूट मची। हर आदमीने दो-दो गिल्लोरियाँ मुँहमें जमायीं—यहाँतक कि जगतने भी। डिब्बा ख़ाली होते देख हम सब प्रसन्न होकर हँसने लगे।

मुझे राव साहबका लाड़ आ गया। मैंने उन्हें एकाएक छातीसे चिपका लिया और उनके सामने उनका दिया एक रुपया वापस करते हुए कहा, "भचावतने चाय पिला दी थी। मेरे पास भी चिल्लर थी। यह लीजिए, आपका एक रुपया वापस।'

'रखो न भई, रखो न भई। अभी तो बहुत जरूरत पड़ेगी।'

मिस्टर भचावतने उद्दण्डतापूर्वक उसे छीनना चाहा और कहा, 'समझते नहीं हो। अभी तो भोजन भी नहीं हुआ है। इस समय साढ़े बारह बजे हैं। महफ़िल चलेगी रातके कमसे कम दस बजे तक। रुपया तो अपनेको लगेगा। घूमने-घामनेके लिए।'

राव साहब पान चबाते हुए प्रेमपूर्वक भचावतके चिबल्लेपनको देख रहे थे। उसकी नोंक उन्हें कई बार गड़ चुकी थी। लेकिन वे अब

मैंने उनसे हाथ मिलाया। और उस हाथ मिलानेमें ही मुझे मालूम हो गया कि पल-भरके लिए ही क्यों न सही, दिल मिल गया है। मैं क्षण-भरके लिए उन उदास, शिथिल, कंजी आँखोंके कत्थई सितारे देखने लगा कि इतनेमें उसने अँगरेजीमें कहा, 'मान लीजिए कि यहाँ एक हत्या हो गयी है।'

चौंकते हुए मैंने जवाब दिया, 'कितना बुरा विचार है।'

उसने कहा, 'लेकिन कितना मौजूँ है।'

'हम तो साहब, खयालोंकी मौजूनियत देखते हैं।'

मैं मुसकरा उठा। किसीकी हत्या हो या न हो, हमारी तो हो ही रही थी। यह साफ था। और मुझे देवकीनन्दन खत्रीके उस तिलिस्मकी याद आयी, जिसमें-से बाहर निकलना असम्भव था, लेकिन जिसके भीतरके प्रांगणोंमें बगीचे भी थे, तहखाने भी थे और जिसमें कई नवयुवतियाँ और किशोरियाँ गिरफ्तार रहती थीं। वे घूम-फिर सकती थीं, तिलिस्मी पेड़ोंके फल खा सकती थीं, लेकिन अपनी हदके बाहर नहीं निकल सकती थीं। ये हदें वो दीवारें थीं जो पहलेसे ही बनी हुई थीं और जिनको तोड़ पाना लगभग असम्भव था अथवा जिन्हें तोड़नेके लिए अपरिसीम साहस, कष्ट सहन करनेकी अपार शक्ति और धैर्य तथा वीरताके अतिरिक्त, विशेष कार्यकौशल और गहरे चातुर्यकी जरूरत थी। मेरी आँखोंमें उस गहरे अँधेरे तिलिस्मके तहखानों और कोठरियोंके बाहरके मैदानोंमें घूमती हुई लाल-पीली और नीली साड़ियाँ अभी भी दीख रही हैं। उनके मुरझाये, गोरे कपोल और ढीली बँधी वेणियोंकी लहराती लटें अभी भी दीख रही हैं और मन-ही-मनमें मैं कल्पना कर रहा हूँ कि क्या यहाँ फँसे हुए बहुत-से लोगोंकी आत्माएँ इसी प्रकारकी तो नहीं हो गयी हैं।......लेकिन, प्रश्न तो यह है कि इस तिलिस्मको कैसे तोड़ा जावे!

मुझे अपनेमें खोया जान दर्शनशास्त्रीने पूछा, 'कहाँ गुम हो गये

भचावतने कहा, 'लेकिन, बिज़नेस तो कर ही रहे हैं !'

राव साहब बोले, 'वो बॉसके सामने टिक नहीं सकते। बिज़नेस है।'

मुझे इस बातचीतसे वितृष्णा हो उठी। मुझे बिज़नेस नहीं दीखता था, वरन् मानवसमुदाय दीखते थे जो विशेष-विशेष स्वार्थों और हितोंकी दिशामें कार्यशील थे। मुझे मानव-समुदायोंमें-के ख़ास व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व, उनके परस्पर सम्बन्ध और उनकी जीवन-प्रणाली दीखती थी। मेरे मनमें उत्पन्न वितृष्णाजनक जीवन-चित्रोंसे मुक्ति पानेके लिए मैं वहाँसे हट गया, और दूर फ़व्वारेकी तरफ़ देखने लगा, जिसके कुण्डमें सिर्फ़ गीली मिट्टी और सड़ा हुआ पानी था, जिसके भीतर गयी सीढ़ियोंपर हाँफते हुए मेंढक अपनी भद्दी, खुली-खुली, चमकीली बटननुमा आँखोंसे दुनियाको देखते थे। मैंने कई बार कहा था कि इस फ़व्वारेको चालू कर दिया जाये और उसकी टोंटी सुधार दी जाये, और कुण्ड साफ़ किया जाये, लेकिन किसीने मेरी बात नहीं सुनी।

फ़व्वारेके कुण्डसे हटकर खुशनुमा मेहराबपर चढ़ी गुलाबकी बेलके नीचेसे गुज़रता हुआ मैं बुड्ढे युकलिप्टसके उस पेड़की ओर जाने लगा जिसका तना—सिर्फ़ तना—आमके दरख़्तोंसे ऊपर निकल आया था और जिसकी शाखाएँ आकाशोन्मुख होती हुई फैल गयी थीं। वहीं हरी चम्पा (मदनमस्त) के छोटे पेड़ थे, जिनकी घनी टहनियाँ प्रसन्न और शान्त दिखाई दे रही थीं।

इस आशासे कि मैं उसका एकाध फूल तोड़ सकूँगा, वहाँ पहुँचा ही था कि उस पेड़के पीछेसे टेरीलीनका पैण्ट और बुशकोट पहने हुए गठियल, ठिगने, कंजी आँखवाले दर्शनशास्त्रीका चमकीला चेहरा सामने आया जिसपर उदासी और उकताहटकी मटमैली आभा फैली हुई थी। मुझे देखकर, अपने शरीरको ढील देकर वे एक पैरपर ज़ोर देकर खड़े हो गये और चिन्ताशील आँखोंसे मुझे देखने लगे।

रहा आया, लेकिन, अपने स्नेहियोंसे सिर्फ अपनी लाश उठवानेके अन्तिम क्षणमें उनके स्पर्शके लिए तरसता हुआ वह देश आ गया फिर उसी कुटरमें रहने लगा जहाँ वह पहले रहता था और अपने घासके दो दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। मैं आजमें दस साल अपने दफ्तर जाते वक्त उस रास्तेसे गुजरता जिसपर उस मिट्टीके अँ कुटरका दरवाज़ा खुलता था और मेरी आँखें उस व्यक्तिकी ओर पित हो चुकी थी क्योंकि वह एकदम पीला पड़ गया था और पाँव हाथके बल चलता था। कहीं ऐसी दशा मेरी भी न हो! हाय!

कि इतनेमें किसी पेड़से एक पत्ता गिरकर मेरे शरीरपर गिरा। मैंने अनजाने ही उसे उठाकर देखा और उसके घने हरे रंगमें दहकती हुई नसोंको देखने लगा। उसमें जवानी थी। नया रक्त था। मुझे उस पत्तेको चूमनेकी और अपने गालोंपर उसे लगा लेनेकी तबीयत हुई गोकि संकोचवश मैंने वैसा नहीं किया।

इतनेमें, जगत पीछेसे दौड़ता हुआ आया और उसने हाँफते हुए समाचार दिया, 'रूसने एक और आदमी आसमानमें छोड़ दिया। टिटोव। वह अबतक अठारह बार प्रदक्षिणा कर चुका है।'

दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा और जगतकी होड़ लगा करती थी। मिश्राने पूछा, 'तो तुम्हें तो बहुत बुरा लगा होगा, जगत! साला रूस क्यों आसमानमें पहुँच रहा है। उसे तो नष्ट होना चा

मिश्राने जगतपर 'भद्दा' अटैक' किया था। मैं जगत चुप रहा। मिश्रा कहता गया, 'लुमुम्बाकी ...... पड़ी, पढ़ नहीं सका, उसके दोस्तोंके विरुद्ध जाती थी। लोग कम्यु-निस्टोंको गालियाँ देते हैं कि वे रूस-चीनकी ओर देखते हैं। लेकिन ये साले, न सिर्फ ब्रिटेन-अमेरिकाकी तरफ़ देखते हैं, उनके बैंकोंमें अपने रुपये रखते हैं। क्यों बे साले, ऑक्सफ़र्ड या हार्वर्ड जा रहा था न! तेरे पास इतना फ़ॉरेन एक्सचेंज कहाँसे आया। तेरा अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद

थे ? लो, यह फूल लो।'

मदनमस्तका फूल सचमुच खूब महक रहा था। लेकिन उसकी मीठी-मीठी महक दिलकी राखपर फैल तो गयी लेकिन ज़हरीली हो गयी और उस जहरको मैं धीरे-धीरे सूंघता रहा।

दर्शनशास्त्री मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया और मेरा हाथ पकड़ बगीचेकी उस मुँड़ेरकी ओर जाने लगा जहाँ हमारे मकानोंके पिछवाड़ेमें लगे हुए केलेके लम्बे-लम्बे चमकदार हरे पत्तोंवाले झाड़ झूल रहे थे। उसने मुझे अपने विश्वासमें लेते हुए कहा, 'सुनो, मैं जल्दी ही यहाँसे चला जाऊँगा।'

'सचमुच ?'

'हाँ।'

मैं एकदम चुप हो गया। अपने अकेलेपनका दुःख मुझे गड़ उठा। मुझे अभीसे उस स्थितिकी याद आने लगी जब वह चला जायेगा और मैं निःसंग रह जाऊँगा। (यद्यपि मैं उसके साथके बावजूद अकेला था।)

मैंने दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रासे कहा, 'तुम जवान हो, तुम्हें तो ज़िन्दगीमें ज़रूर साहस करना चाहिए। और नयी तलाशमें जाना चाहिए। लेकिन......मैं ? मैं कहाँ जाऊँगा। मेरे सात बच्चे हैं और माता-पिताकी भी ज़िम्मेदारियाँ हैं। रोग, क़र्ज और तरह-तरहकी उलझनें मुझपर हैं।'

और मैं उसाँस लेकर चुप हो गया।

दर्शनशास्त्री कुछ नहीं बोला। वह मेरे घरकी हालत जानता था। और मेरे सामने अब यह सवाल था कि मैं कहीं अगले संघर्षमें टूट तो नहीं जाऊँगा। क्योंकि अब मेरा शरीर भी साथ नहीं देता। तो क्या अब मैं यहीं बैठा रहूँ ?

और, मेरे सामने, आज यथार्थके काले भयानक अँधेरे-भरे चित्र आने लगे, मुझे वह आदमी याद आने लगा, जो परदेशमें सालोंसे बीमार

रहा आया, लेकिन, अपने स्नेहियोंसे सिर्फ अपनी लाश उठवानेके लिए, अन्तिम क्षणमें उनके स्पर्शके लिए तरसता हुआ वह देश आ गया और फिर उसी कुठरमें रहने लगा जहाँ वह पहले रहता था और अपने कुठर-वासके दो दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। मैं आजसे दस साल पहले अपने दफ्तर जाते वक्त उस रास्तेसे गुजरता जिसपर उस मिट्टीके अँधेरे कुठरका दरवाजा खुलता था और मेरी आँखें उन व्यक्तिकी ओर आक-र्षित हो चुकी थीं क्योंकि वह एकदम पीला पड़ गया था और पाँव पसारे हाथके बल चलता था। कहीं ऐसी दशा मेरी भी न हो! हाय!

कि इतनेमें किसी पेड़से एक पत्ता गिरकर मेरे शरीरपर गिरा। मैंने अनजाने ही उसे उठाकर देखा और उसके घने हरे रंगमें टहनी हुई नसोंको देखने लगा। उसमें जवानी थी। नया रक्त था। मुझे उस पत्तेको चूमनेकी और अपने गालोंपर उसे लगा लेनेकी तबीयत हुई गोकि संकोचवश मैंने वैसा नहीं किया।

इतनेमें, जगत पीछेसे दौड़ता हुआ आया और उसने हाँफते हुए समाचार दिया, 'रूसने एक और आदमी आसमानमें छोड़ दिया। टिटोव। वह अबतक अठारह बार प्रदक्षिणा कर चुका है।'

दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा और जगतकी होड़ लगा करती थी। मिश्राने पूछा, 'तो तुम्हें तो बहुत बुरा लगा होगा, जगत! साला रूस क्यों आसमानमें पहुँच रहा है। उसे तो नष्ट होना चाहिए था!'

मिश्राने जगतपर 'भद्दा' अटैक किया था। मैं क्या कर सकता था। जगत चुप रहा। मिश्रा कहता गया, 'युयुत्सावी कविता जगतने नहीं पढ़ी, पढ़ नहीं सका, उसके लोहोंकि विरुद्ध जाती थी। लोग कम्यु-निस्टोंको गालियाँ देते हैं कि वे रूस-चीनकी ओर देखते हैं। लेकिन ये साले, न सिर्फ ब्रिटेन-अमेरिकाकी तरफ देखते हैं, उनके पैरोंमें अपने रुपये रखते हैं। क्यों बे साले, ऑक्सफ़र्ड या हार्वर्ड जा रहा था न! तेरे पास इतना फ़ॉरेन एक्सचेंज कहाँसे आया। तेरा अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद

विपाश

थे ? लो, यह फूल लो।'

मदनमस्तका फूल सचमुच खूब महक रहा था। लेकिन उसकी मीठी-मीठी महक दिलकी राखपर फैल तो गयी लेकिन ज़हरीली हो गयी और उस ज़हरको मैं धीरे-धीरे सूंघता रहा।

दर्शनशास्त्री मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया और मेरा हाथ पकड़ बगीचेकी उस मुंड़ेरकी ओर जाने लगा जहाँ हमारे मकानोंके पिछवाड़ेमें लगे हुए केलेके लम्बे-लम्बे चमकदार हरे पत्तोंवाले झाड़ झूल रहे थे। उसने मुझे अपने विश्वासमें लेते हुए कहा, 'सुनो, मैं जल्दी ही यहाँसे चला जाऊँगा।'

'सचमुच ?'

'हाँ।'

मैं एकदम चुप हो गया। अपने अकेलेपनका दुःख मुझे गड़ उठा। मुझे अभीसे उस स्थितिकी याद आने लगी जब वह चला जायेगा और मैं निःसंग रह जाऊँगा। (यद्यपि मैं उसके साथके बावजूद अकेला था।)

मैंने दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रासे कहा, 'तुम जवान हो, तुम्हें तो ज़िन्दगीमें ज़रूर साहस करना चाहिए। और नयी तलाशमें जाना चाहिए। लेकिन.......मैं ? मैं कहाँ जाऊँगा। मेरे सात बच्चे हैं और माता-पिताकी भी ज़िम्मेदारियाँ हैं। रोग, क़र्ज़ और तरह-तरहकी उलझनें मुझपर हैं।'

और मैं उसाँस लेकर चुप हो गया।

दर्शनशास्त्री कुछ नहीं बोला। वह मेरे घरकी हालत जानता था। और मेरे सामने अब यह सवाल था कि मैं कहीं अगले संघर्षमें टूट तो नहीं जाऊँगा। क्योंकि अब मेरा शरीर भी साथ नहीं देता। तो क्या अब मैं यहीं बैठा रहूँ ?

और, मेरे सामने, आज यथार्थके काले भयानक अँधेरे-भरे चित्र आने लगे, मुझे वह आदमी याद आने लगा, जो परदेशमें सालोंसे बीमार

वस्तुतः मुक्तिबोधका सारा साहित्य एक अभिशप्त जीवन-जीवी अत्यन्त संवेदनशील सामाजिक व्यक्तिका चिन्तन-विवेचन है, और यह भी कहीं निरालेमें या किसी अन्यके साथ बैठकर नहीं, अपने पीड़ा-संघर्षों-भरे परिवेशमें रहते और अपनेसे ऊपर उठकर स्वयं अपनेसे जूझते हुए किया गया है। ये कहानियाँ तो इस बातको लाल स्याहीसे रेखांकित करती हैं। युगकी वास्तविकताओंको मुक्तिबोधने इन कहानियोंमें कुछ इस प्रकार और इतनी हद तक निचोड़कर रख दिया है कि इनमें-से कई तो कन्फेशन-जैसी बन गयी हैं।

प्रस्तुत है 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' और 'एक साहित्यिककी डायरी' के बाद यह 'काठका सपना', मुक्तिबोध-लिखित 'मनुष्यताकी दस्तावेज़' का एक और पृष्ठ।

• •